हिन्दी-काव्य-शास्त्र

लेखक

आचार्य शान्तिलाल जैन, 'बालेन्दु'

प्राक्कथन लेखक

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डी० लिट्०

हिन्दी-विभाग

प्रयाग-विश्व-विद्यालय, प्रयाग

साहित्य भवन लिमिटेड

इलाहाबाद

प्राक्कथन

काव्य की अलौकिकता का आनंद प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि काव्य-शास्त्र-संबंधी ग्रंथ का अध्ययन किया जाय। न तो कवि-कर्म-कुशल व्यक्ति के लिए और न पाठक के लिए काव्य-शास्त्र का मर्मज्ञ होना नितांत आवश्यक है। तब भी काव्य के शास्त्रीय सिद्धान्तों, उसके स्वरूप, गुण, दोष आदि का ज्ञान प्राप्त करना दोनों के लिए नितान्त आवश्यक है। काव्य के निर्माण और पारायण में सद्-असद् का विचार लक्षण ग्रन्थों के माध्यम द्वारा ही हो सकता है। काव्य जैसे रसपूर्ण और साथ ही जटिल विषय को भलीभाँति समझने-समझाने के लिए काव्य-कला-कोविदत्व और विशद विद्वत्ता अपेक्षित है। संस्कृत में ऐसे अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं जो काव्य-पथ-प्रदर्शक हैं। भरतमुनि, भामह, उद्भट, वामन, रुद्रट, भोज, आनन्द वर्धन, मम्मट, दण्डी, विश्वनाथ, अप्पय दीक्षित, पंडितराज जगन्नाथ आदि अनेक ऐसे भारतीय आचार्य और काव्य-शास्त्र-मर्मज्ञ हुए हैं जिन्होंने अपनी प्रतिभा के आधार पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का निर्माण कर साहित्य की श्रीवृद्धि की है। इससे काव्य-प्रणेताओं और काव्य-प्रेमी जनो दोनों को काव्य के रहस्य अवगत करने का सुअवसर प्राप्त होता रहा है। संस्कृत-ग्रन्थों पर लिखी गईं टीकाएँ भी इस संबंध में सहायक रही हैं। हिन्दी साहित्य के मध्ययुग के उत्तरार्द्ध में भी रीति-ग्रन्थों की परिपाटी चल पड़ी थी। मध्ययुगीन आचार्य-कवि अपने रुचिर रीति ग्रन्थों से हिन्दी साहित्य का भाण्डारी भरते रहे। केशव, मतिराम, भूषण, देवदास, पद्माकर आदि कवियों ने अलंकार, रस, छंद आदि संबंधी सुन्दर ग्रन्थों की रचना की। यह परंपरा ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में शिथिल हो गई थी। साथ ही हिन्दी के प्राचीन रीति-ग्रन्थों में अनेक लक्षण और उदाहरण ऐसे मिलते हैं जो संदिग्ध हैं। वास्तव में उस समय के आचार्य कवि विषय स्पष्ट करने के लिए गद्य जैसे माध्यम का उपयोग न कर सके। उनके ग्रन्थों में दुर्बोधता मिलती है उसका भी बहुत कुछ यही कारण है। किन्तु धीरे-धीरे गद्य का विकास हो जाने से रीति-ग्रन्थों की रचना-शैली में रूपान्तर उपस्थित हो गया है। यह संतोष का विषय है कि आधुनिक युग में भी वैज्ञानिक ढंग से लिखे गए कुछ ग्रन्थ-रत्न उपलब्ध हैं। बाबू जगन्नाथ प्रसाद

'भानु' कृत 'काव्य-प्रभाकर', लाला भगवान 'दीन' कृत 'अलंकार-मंजूषा' और 'व्यंग्यार्थ-मंजूषा', सेठ कन्हैया लाल पोद्दार कृत 'काव्य-कल्पद्रुम', श्री रामदहिन मिश्र कृत 'काव्यालोक' और 'काव्य में अप्रस्तुत योजना' आदि ऐसे ही प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं जिनमें प्राचीन काव्य-शास्त्र को प्राचीन ढंग से या नवीन ढंग से स्पष्ट करने की सफल चेष्टा की गई है। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी कृत 'रसकलस' भी इस संबंध में एक प्रमुख ग्रन्थ है। इन सब रचनाओं पर हिन्दी भाषा-भाषियों को गर्व हो सकता है।

यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है कि आचार्य श्री शान्तिलाल जैन 'बालेन्दु' ने काव्य-शास्त्र पर इस उत्तम ग्रन्थ की रचना की है। हिन्दी में अब तक जितने ग्रंथ लिखे गए हैं वे या तो ऐसे ग्रन्थ हैं जिन्हें समझने में साधारण पाठक को कठिनाई होती है या ऐसे ग्रन्थ हैंजो केवल अलंकार, रस, छन्द आदि किसी एक अंग का निरूपण करते हैं। 'बालेन्दु' जी की प्रस्तुत कृति सभी अंगो का सर्वांग, पूर्ण और सुव्यवस्थित तथा वैज्ञानिक विवेचन करती है। उन्होंने काव्य-शास्त्र जैसे गूढ़ और जटिल विषय को स्पष्ट सरल और सुबोध बनाने का सफल प्रयास किया है। इस ग्रन्थ में काव्य-परिभाषा, काव्य-भेद, ध्वनि, व्यंग्य, शब्द-शक्ति, रस, अलंकार, पिंगल, वृत्ति, गुण आदि काव्य के समस्त अंग-प्रत्यंग का सुबोध वर्णन है। 'बालेन्दु' जी प्रत्येक विषय को सुगम बनाने में सफल हुए हैं। भाषा भी उन्होंने विषय-निरूपण के अनुकूल और व्यवस्थित रखी है जिससे काव्य-शास्त्र के विद्यार्थी का कार्य बहुत सरल हो जाता है। संस्कृत के आचार्यों का आश्रय ग्रहण कर 'बालेन्दु' जी ने अपने ग्रन्थ में प्रामाणिकता को स्थान दिया है और साथ ही संस्कृत और हिन्दी के अनेक विख्यात कवियों की रचनाओं से उदाहरण देकर विषय को यथासाध्य स्पष्ट बनाया है। इस सर्वथा श्लाघनीय ग्रन्थ के लिए वे बधाई के पात्र हैं। मुझे दृढ़ विश्वास है कि समस्त सहृदय तथा सुयोग्य समाज उनके इस महत्त्वपूर्ण कार्य का स्वागत और समादर करेगा।

हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी,
५-५-१९५२

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

अनुवचन

'निधौ रसानां निलये गुणानामलंकृतीनामुदधावगाधे
काव्ये कवीन्द्रस्य नवार्थतीर्थे या व्याचिकीर्षा मम तां नतोऽस्मि ॥'

—पूर्णसरस्वती

रसों के भाण्डार, गुणों के घर, अद्भुत, नवीन और अगाध अर्थ-रत्नों के समुद्र कवीन्द्र के काव्य पर जो मेरी यह व्यचिकीर्षा है, उसे नमस्कार है।

संस्कृत और हिन्दी में काव्यशास्त्रान्वित ग्रन्थों का अभाव नहीं है, परन्तु या तो उनमें क्लिष्ट भाषा का प्रयोग किया गया है, या किसी अन्य कारणों से उनमें क्लिष्टता का सद्भाव हुआ है या फिर वे काव्य के किसी दो या दो-तीन अंगों का ही निरूपण करते हैं। कोई भी ग्रन्थ तत्तद्विषय में सर्वाङ्ग विभूषित नहीं है।

सुतराँ मेरी यह बहुत दिनों से अभिलाषा रही है कि किसी एक ऐसे ग्रंथ की निर्वर्तना की जाय, जो काव्य के कृत्स्नांगों पर पूर्णरूपेण प्रकाश डालता हो। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर मैंने प्रस्तुत 'हिन्दी-काव्य-शास्त्र' को प्रवर्तना की है। पूर्णाशा है, यह काव्यानुरागियों को पसंद आवेगा।

प्रस्तुत ग्रंथ में जिन-जिन हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत और आंग्ल ग्रंथों से सहायता ली गई है, मैं उनके प्रवर्तकों, भाष्यकारों और आलोचकों का हृदय से आभार मानता हूँ। साथ ही मैं पं० विश्वनाथ मिश्र, एम्० ए०, बी० टी०, साहित्यरत्नः प्रधानाध्यापक माध्यमिकशाला, गंजबासोदा (भेलसा) एवं श्री झमकलाल जैन, बी० काम्०, एल्० एल्० बी० अर्थ-साहित्यरत्नः इन्दौरनगर सेविकाः का भी उनकी शुभ प्रेरणा एवं सद्सहयोग के प्रति अत्यन्त उपकृत हूँ।

प्राक्कथन लेखन के हेतु डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डी० लिट्० हिन्दी विभाग—प्रयाग विश्वविद्यालय : का भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने ग्रंथ का यथायोग्य संशोधन कर मुझे कई महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रदान कर उपकृत किया है।

"अन्ये च बहवो विज्ञाः ज्ञानविज्ञान पारगाः।
पथ-प्रदर्शको ये स्युः तेभ्योऽपीह नमोनमः॥"

हिन्दी-ज्ञानपीठ,
३१७, मल्हारगंज (लुहारपट्टी), इंदौर
१५ मई, १९५२ ई०

बालेन्दु

विषय-मालिका

१. काव्य की परिभाषा और उसके भेदोपभेद

काव्य की परिभाषा न जाने कितने प्राच्य और पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों ने भिन्न भिन्न प्रकार से दी है। उनमें से मुख्य-मुख्य मनीषियों की परिभाषाओं पर ही हम यहाँ प्रकाश डालेंगे।

पाश्चात्य मनीषी

(१) **महान् विचारक श्री अरस्तू के मतानुसारः**—'Poetry is to be defined as an art, the fundamental principle of which is imitation—that imitation being through the medium of Language.' (अर्थात् काव्य एक कला है, जिसका आधारभूत सिद्धान्त भाषा के माध्यम से किया हुआ अनुकरण है।)

(२) **सर पी० सिडनी के मतानुसारः**—'Poetry is an art of imitattion, to speak metaphorically a speaking picture with this end to teach and delight.' (अर्थात् काव्य अनुकरण की कला है, अलंकृत भाषा में कह सकते हैं कि वह बोलता हुआ चित्र है; जिसका उद्देश्य सिखाना और प्रसन्न करना है।)

(३) **महाकवि शेक्सपियर के मतानुसारः**—

'An imagination bodies forth,
The form of things unknown the poet's pen,
Turns them to shapes and gives to airy nothings,
A local habitation and a name.'

(अर्थात् कल्पना जो कवि की लेखनी द्वारा अज्ञात पदार्थों एवं

वायवी अनस्तित्वों को मूर्तरूप करके उन्हें नाम एवं ग्राम प्रदान करती है, उसी कल्पना की अभिव्यक्ति को काव्य कहते हैं।)

(४) पी० बी० शेली के मतानुसार:—'Poetry in a general sense may be defined to be the expression of the imagination, Poetry is ever accompanied with pleasure.' (अर्थात् कल्पना की अभिव्यक्ति ही काव्य है, जिसका कि सुख से अविच्छेद सम्बन्ध है।)

(५) मिल्टन के मतानुसार:—'Poetry should be simple, sensuous and impassioned.' (अर्थात् काव्य सुबोध, प्रत्यक्ष-मूलक और रागात्मक होना चाहिए।)

(६) कॉलरिज के मतानुसार:—'Poetry the best words in best order.' (अर्थात् काव्य सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्कृष्ट क्रम है।)

(७) महामना जानसन के मतानुसार:—'Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason.' (अर्थात् काव्य सुख और सत्य से संयोजित कला है, जिसमें बुद्धि की सहायतार्थ कल्पना का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है।)

(८) महाकवि वर्ड्सवर्थ के मतानुसार:—'Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings. It takes its origin from emotion recollected in tranquildity.' (अर्थात् काव्य स्वेच्छानुरूप प्रबल भावों का प्रवाह है, जिसका उत्पत्ति-स्थान शांति के समय स्मृत मनोवेग है।)

(९) 'दि डिफेन्स ऑव् पोइट्री' के रचयिता के मतानुसार:—'Poetry is the record of the best and happiest moments of the happiest and best minds.' (अर्थात् काव्य सुपरिष्कृत और विकुर्वाण मस्तिष्कों के शुभ और मंगलमयी क्षणों का

प्राच्य मनीषी

(१०) **रसवाद के प्रधानाचार्य श्री विश्वनाथ मिश्र के मतानुसार** :—"वाक्यं रसात्मकं काव्यम् ।" (अर्थात् रसात्मक वाक्य ही काव्य है ।)

(११) **मम्मटाचार्य के मतानुसार** :—"तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि ।" (अर्थात् निर्दोष, गुणयुक्त, अलंकृत एवं मनोहर अर्थ से युक्त वाक्य को काव्य कहते हैं ।)

(१२) **पंडितेन्द्र जगन्नाथ के मतानुसार** :—"रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम् ।" (अर्थात् रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्दों को काव्य कहते हैं ।)

(१३) 'वेदों में भगवान् को (कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भुः) कवि और सृष्टि तथा वेद को ही (देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति) 'काव्य' कहा गया है । '

(१४) **भोजदेव के मतानुसार** :—'रसान्वितमलंकारैलंकृतं निर्दोष गुणवत्कवे : कर्मकाव्यमित्याह ।' अर्थात् रस से युक्त, अलंकारों से अलंकृत, गुण सम्पन्न और सर्वदोष विवर्जित जो कवि-कर्म है, उसे ही 'काव्य' कहते हैं ।

(१५) **आचार्य द्विवेदी के मतानुसार** :—"ज्ञान-राशि के संचित कोष को साहित्य कहते हैं ।"

सूचना :—'साहित्य' शब्द 'काव्य' का ही प्रति शब्द है । सुतरां साहित्य की परिभाषा भी काव्य की ही परिभाषा समझनी चाहिए । (साहित्यालोचन)

(१६) **पं० जयशंकर 'प्रसाद' के मतानुसार** :—"काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है, जिसका सम्बन्ध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है । वह श्रेयमयी प्रिय रचनात्मक ज्ञान-धारा है ।"

परिभाषा-विमर्श

सर्वप्रथम चारों विद्वानों का मत कभी ग्राह्य नहीं हो सकते क्योंकि उनमें से प्रथम दो विद्वानों ने तो अनुकरण की कला को ही काव्य कहा है । अनुकरण

का काम मस्तिष्क का है, किन्तु हृदय के योग के बिना काव्य हो भी कैसे सकता है। इस दृष्टि से ये परिभाषाएं नितान्त एकांगी हैं। इसी प्रकार तार्किक दृष्टि से शैली और शेक्सपियर की परिभाषाएं भी सर्वथा एकांगी हैं। केवल कल्पना को प्रधानता देना नितान्त असंभव है।

शैली के मतानुसार काव्य का प्रयोजन केवल सुख प्राप्ति का है, सो यह भी एकांगी ही है क्योंकि काव्य से तो सुख-दुःख दोनों की प्राप्ति होती है। फिर केवल सुख प्राप्ति को ही क्योंकर काव्य का उद्देश्य समझा जा सकता है।

इसी प्रकार वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज और बाबू जयशंकर प्रसाद ने क्रमशः भाव, शब्द और आत्मा की सहजवृत्ति पर जोर देकर क्रमशः अभिव्यक्ति, अर्थ और पाठक या प्रेक्षक तथा अभिव्यक्ति को गौण रखा है। अतः ये परिभाषाएं भी एकांगी ही हैं।

'डिफेन्स ऑव् पोइट्री' के लेखक ने 'विकुर्वाण मस्तिष्क के मंगलमयी क्षणों के अभिलेख को काव्य कहा हैं।' सो यह भी ठीक नहीं हैं, क्योंकि दुःख के क्षणों में भी तो काव्य की उत्पत्ति कही गई है। जैसा कि कहा भी है—

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
आँखों के रस्ते चुपचाप, बही होगी कविता अनजान॥"

आचार्य विश्वनाथ आदि की परिभाषाएँ सर्वग्राह्य हैं। वस्तुतः परिभाषा ऐसी ही होनी चाहिए।

शैली की दृष्टि से काव्य के भेद :—

लिखावट के भेद से काव्य के ३ भेद होते हैं—(१) गद्य, (२) पद्य और (३) चम्पू।

(१) गद्य

शब्दाचार या व्याकरण के आधार पर की गई रचना को गद्य कहते हैं। इसके अंतर्गत अभिनेय नाटक, उपन्यास, कहानी एवं आलोचनाएँ इत्यादि आते हैं। पद्य की अपेक्षा गद्यकाव्य में सफलता प्राप्त करना अधिक कठिन होता है। इसीलिये कहा भी है—'गद्यं कवीनां निकष वदन्ति'—अर्थात् गद्य-काव्य कवियों की निकष (कसौटी) है।.........

(२) पद्य

पिङ्गलशास्त्र के नियमों से बद्ध रचना को पद्य कहते हैं। अर्वाचीन कविगण पिंगल के नियमों की उपेक्षा करके एक प्रकार के लयात्मक छन्दों (स्वच्छन्द छन्दों) की रचनाएँ करने लगे हैं जिनमें लय का प्राधान्य होता है। ऐसी रचनाएँ भी पद्य के अंतर्गत समझी जाती हैं। पद्य के अंतर्गत सूक्तियाँ और कविताएँ भी आती हैं। जिनके लक्षण और उदाहरण क्रमशः नीचे दिये गये हैं।

(१) **सूक्ति**—वह चमत्कृत युक्ति, जिसमें वर्ण विन्यास की विशेषता से कथन को विशिष्ट ढंग से कहा जाता है, उसे "सूक्ति" कहते हैं। यथा—

"तंत्री-नाद कवित्त-रस सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग॥"—बिहारी

"रात्रिराज! सुकुमार शरीरः कः सहेत तव नाम मयूखान्।
स्पर्शमाप्य सहसैव यदीयम् चन्द्रकांतदृषदोऽपि गलंति॥—मंखक

(२) **कविता**—जिस उक्ति में ध्वनि या गुणीभूतव्यंग्य की प्रधानता होती है, उसे 'कविता' कहते हैं।

"चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के वीर॥" —बिहारी

"आयासः परहिंसा वैतंसिक, सारमेय! तव सारः।
त्वामपसार्य विभाज्यः कुरंग एषोऽधुनैवान्यैः॥"—गोवर्द्धनाचार्य

[वृषभानुजा = बैल की बहिन गाय और वृषभानु की बेटी राधाजी]
(हलधर = बैल और बलराम)

इसके २ भेद हैं—(१) समास और (२) व्यास

(१) **समास**—जहाँ किसी विस्तृत बात का वर्णन घटाकर अत्यन्त थोड़े में किया जाता है, वहाँ समास कविता होती है। और—

(२) **व्यास**—जहाँ किसी थोड़ी सी बात का वर्णन अत्यन्त बढ़ा-चढ़ा कर किया जाता है, वहाँ व्यास कविता होती है।

इन दोनों के उदाहरण क्रमशः नीचे दिये गये हैं—

(१) चीर जोवौ जोरी जुरे क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के वीर॥ (समास)

(२) अनगने औठपाय रावरे गने न जाहिं,
वेऊ आहि तमकि करैया अतिमान की।
तुम जोई सोई कहो वेऊ जोई सोई सुनें,
तुम जीभ-पातरे वे पातरी हैं कान की॥
कैसे 'केसोराय' काहि बरजौं मनाऊँ काहि,
आपने सयाँ धौं कौन सुनत सयान की।
कोऊ बड़वानल की ह्वै है सोई ऐहै बीच,
तुम बासुदेव वे हैं बेटी वृषभान की॥ (व्यास)

(३) वे ठाडे उमदात उत जल न बुझै बड़वागि।
जाही सौं लाग्यौ हियौ, ताही के उर लागि॥ (समास)

(४) मेरो मुँह चूमे तेरी पूजि साध चूमिवे की,
चोट ओस अंसु क्यों सिरात प्यास डाढ़े हैं।
छोटोकर मेरे कहा छ्वावति छबिली छाती,
छ्वावो जाके छ्वाइबे को अभिलाष बाढ़े हैं॥
खेलन जो आई हो तौ खेलो जैसे खेलियत,
'केसोराय' की सौं तैं ये कौन खेल काढ़े हैं।
फूलफूल भेटति है, मोहि कहा मेरी भटू,
भेंटै किन जायवे जु भेटिबे को ठाढ़े हैं॥ (व्यास)

(५) कोहर सी एड़ीन की लाली देखि सुभाय।
पाय महावर देनको आप भई बेपाय॥ (समास)

(६) मंद होइ जाती इन्द्रबधु की बरन दुति,
प्यारी के चरन नवनीत हुते नरमैं।
सहज ललाई बरनी न जात "घासीराम"
चुईसी परत कवि हू की मति भरमैं॥

एड़ी ठकुराइन की नाइन गहत जबै,
इंगुर को सोरंग दौरि आवै करवरमैं।
देनो है कि दीनो है निहारै सोच बार बार,
बावरी-सी ह्वै रही महावर लेकर मैं॥ (व्यास)

(७) नभ लाली चाली निसा, चटकाली धुनि कीन।
रतिपाली आली अनत, आये बनमाली न॥ (समास)

(८) जोन्हते खाली छपाकर भो छन में छनदा अब चाहत चाली।
कूजि उठै चटकाली चहुँ दिसि फैल गयी नभ ऊपर लाली॥
साली मनोज विथा उर में निपटै निठुराई धरे बनमाली।
आली कहा कहिए कहि 'तोष' कहूँ प्रिय प्रीति नई प्रतिपाली॥ (व्यास)

(९) कहा लड़ैते दग करै, परै लाल बेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट, कहूँ मुकुट बनमाल॥ (समास)

(१०) कहूँ बनमाल कहूँ गुञ्जनि की माल कहूँ,
संग सखा ग्वाल ऐसे हाल भूलि गये हैं।
कहूँ मोरचन्द्रिका लकुट कहूँ पीतपट,
मुरली-मुकुट कहूँ न्यारे डारि दये हैं॥
कुण्डल अडोलकहूँ 'सुंदर' न बोलें बोल,
लोचन अलोल मानों काहू हर लिये हैं।
घूंघट की ओट ह्वै के चितयो की चोट करी,
लालन तो लोट पोट तबहीं तें भये हैं॥ (व्यास)

(३) चम्पू (मिश्रकाव्य)

॥ गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते।" अर्थात्

ऐसी रचनाएँ जो पद्य और गद्य दोनों में ली जाती हैं, उन्हें चम्पू या मिश्रकाव्य कहते हैं।

उदाहरणतः अनूप शर्मा कृत "फेरि मिलिबो"। दृश्य-काव्य नाटकादि जो अनभिनेय (खेले न जा सकें) हो, वे भी चम्पू ग्रंथ कहे जाते हैं।

स्वरूप की दृष्टि से काव्य के भेद

स्वरूप की दृष्टि से काव्य के २ भेद हैं :—(१) दृश्य और (२) श्रव्य

दृश्य-काव्य

जिस काव्य की रसानुभूति केवल श्रवण या पठन मात्र से नहीं, परन्तु अभिनयादि के देखने से होती है, उसे दृश्य काव्य कहते हैं। श्रव्य काव्य का रसास्वादन केवल पठित वर्ग ही कर सकता है, परन्तु दृश्य-काव्य का रसास्वादन पठित और अपठित दोनों वर्ग कर सकते हैं। सुतरां इसे भरतमुनि ने पांचवा वेद तक कह डाला है, जैसा कि नीचे के उदाहरण से स्पष्ट है—

"न वेद व्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्र जातिषु।
तस्मादसृजांपरं वेदं पंचमं सर्ववर्णिकम्॥" (नाट्यशास्त्र—प्रथमोऽध्याय)

दृश्यकाव्यांतर्गत रूपक और उपरूपक आते हैं, जिनमें से रूपक के १० और उपरूपक के १८ भेद होते हैं।

रूपक के १० भेद

(१) **नाटक**—यह शब्द 'नट्' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है 'अभिनय करना'। अधिकांश व्यक्ति 'नाटक' को 'रूपक' का पर्यायवाची शब्द समझते हैं, परन्तु वास्तव में यह रूपक के १० भेदों में से एक भेद है। 'रूपक' के २ अर्थ हैं 'रूप धारण करना' और 'अभिनय करने योग्य वस्तु'। यदि हम रूपक का अर्थ 'रूप धारण करना' लें तब भी वही भाव आता है। जिसे नायक और नायिका रंगभूमि पर विविध रूपों को धारण कर दर्शकों के मन को मोहते हैं, उसे रूपक कहते हैं।
महाकवि कालिदास ने भी नाटक के बारे में लिखा है—

"नाट्यं भिन्न रुचेर्जनस्य बहुधा एकं समाराधनं"। (अर्थात् जो भिन्न-भिन्न रुचिवाले व्यक्तियों का मनोरञ्जन करता है, वही नाटक है।)

इसकी कथा लोक प्रसिद्ध होती है। इसका नायक धीरोदात्त राजा, विद्वान् या कोई दिव्य (देवता) या दिव्यादिव्य (देवावतार) होता है। इसमें कम से कम ५ अङ्क होते हैं, जो उत्तरोत्तर छोटे होते चले जाते हैं। ५ अङ्क से अधिक

अङ्क जिस नाटक में होते हैं, उसे 'महानाटक' कहते हैं। इसमें वीर या शृंगार रस की प्रधानता होती है, अन्य रस इनमें से किसी एक प्रधान रस के अंग होकर आते हैं।

(२) **प्रकरण**—इसकी कथा लौकिक या कवि कल्पित होती है। इसका नायक द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) होता है। नायिका कोई श्रेष्टकुल-कन्या या वेश्या होती है। इसमें शृंगार रस प्रधान होता है। इसका एक भेद मद्यप (जुआरी और शराबी) विट् चेटादि की चेष्टाओं से परिपूर्ण होता है। अन्य सब बातें नाटक के समान होती हैं।

(३) **भाण**—इसकी कथा कपोल कल्पित होती है। इसमें एक ही अङ्क और एक ही पात्र होता है, वह भी कोई विट् होता है। वह रंगमंच पर अपनी या औरों की अनुभूत बातों को कथोपकथन के रूप में स्वयं ही प्रश्न करता और उसका उत्तर देता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इसमें केवल धूर्तों का ही चरित्र-चित्रण किया जाता है।

(४) **प्रहसन**—इसमें हास्य रस की प्रधानता होती है। इसका नायक कोई तपस्वी (झूठा) नपुंसक, कंचुकी या पुरोहित आदि होता है। अन्य सब बातें 'भाण' के समान होती है।

(५) **डिम**—इसकी कथा इतिहास-प्रसिद्ध होती है। इसमें गंधर्व, यक्ष, सुरासुर, भूत, प्रेत आदि अत्यन्त उद्धत १६ नायक होते हैं। इसमें इन्द्रजाल, संग्राम, क्रोध और भूत प्रेतादिकों की चेष्टाओं का वर्णन ज्यादा से ज्यादा ४ अंकों में किया जाता है। रौद्र रस प्रधान और अन्य रस उसके सहायक होते हैं।

(६) **व्यायोग**—इसकी कथा लोक या पुराण प्रसिद्ध होती है। इसका नायक धीरोद्धत अथवा धीरोदात्त होता है। इसमें एक ही अंक होता है, जिसमें वीर रस प्रधान होता है। इसमें स्त्री पात्रों का सर्वथाभाव व पुरुषपात्रों की बहुलता होती है।

(७) **समवकार**—इसकी कथा पुराण प्रसिद्ध होती है, जिसमें सुरासुरान्वित घटनाओं का वर्णन तीन अंकों में किया जाता है। इसमें द्वादश (१२) सुरासुर नायक व वीर रस प्रधान रहता है। अन्य सब रस उसके सहायक होते हैं।

(८) **वीथा**—इसमें शृंगार रस की प्रधानता रहती है। शेष सब बातें 'भाण' के ही समान होती हैं।

(९) **ईहामृग**—इसकी कथावस्तु कुछ कपोल कल्पित और कुछ इतिहास प्रसिद्ध होती है। इसका नायक धीरोद्धत, अदिव्य (मनुष्य) या दिव्य (देवता) होता है। इसमें एक ही अङ्क होता है।

(१०) **अङ्क**—इसकी कथा लोक प्रसिद्ध होती है और नायक कोई साधारण व्यक्ति होता है। इसमें भी एक ही अंक होता है जिसमें स्त्रियों के करुणरुदन की अधिकता होने से करुण रस प्रधान होता है।

उपरूपक के १८ भेद

(१) **नाटिका**—इसकी कथा लोक प्रसिद्ध होती है, नायक धीरललित कोई राजा; और नायिका राजवंश की कोई संगीतज्ञा कन्या होती है। इसमें चार अङ्क होते हैं; जिसमें कि अधिकांश पात्र स्त्रीयाँ ही होती हैं।

(२) **त्रोटक**—इसमें ५ से लगाकर आठ या नौ अङ्क होते हैं और प्रत्येक अंक में विदूषक (नकलची) का कार्य होता है। शृंगार रस प्रधान होता है।

(३) **गोष्ठी**—इसमें १ अंक होता है, जिसमें चार पाँच स्त्री पात्र और आठ दस पुरुष पात्रों का कार्य वर्णित होता है। संभोग शृंगार रस की प्रधानता होती है।

(४) **सट्टक**—इसके अंकों को 'जनबिका' कहते हैं, जिसमें अद्भुत रस की प्रधानता होती है। अन्य सब बातें 'नाटिका' के सदृश होती हैं।

सूचना—यह केवल प्राकृत भाषा में ही लिखा जाता है।

(५) **नाट्यरासक**—इसमें एक ही अंक होता है, जिसमें शृंगार मिश्रित हास्य रस की प्रधानता रहती है। इसका उपनायक नर्म सचिव या पीठमर्द होता है और नायिका वासकसज्जा (विविध शृंगारों से अलंकृत होकर पतिदेवता की प्रतीक्षा करने वाली) होती है।

(६) **प्रस्थानक**—इसमें २ अङ्क होते हैं, नायक दास, उपनायक बलहीन व्यक्ति और नायिका दासी होती है।

(७) **उल्लाप्य**—इसमें तीन अंक होते हैं, कथा अलौकिक, नायक धीरोदात्त तथा शृंगार, हास्य और करुण रस की प्रधानता रहती है।

(८) **काव्य**—इसमें एक अंक होता है, जिसमें संगीत और हास्य रस की प्रचुरता रहती है।

(९) **रासक**—इसमें एक अंक होता है, पाँच पात्र होते हैं, पर सूत्रधार नहीं होता। नायिका प्रसिद्ध और नायक मूर्ख होता है। इसमें उदात्त भाव उत्तरोत्तर प्रदर्शित किया जाता है।

(१०) **प्रेक्षण**—इसमें एक अंक होता है, नायक बलहीन होता है, और सूत्रधार नहीं होता। नान्दी तथा प्ररोचना नेपथ्य (पर्दे के पीछे से) से पढ़ी जाती है।

(११) **संलापक**—इसमें चार अंक होते हैं और नायक धूर्त होता है। इसमें संग्रामादि की विशद वर्णन रहता है।

(१२) **श्रीगदित**—इसमें एक अंक होता है। नायक धीरोदात्त और नायिका लोक प्रसिद्ध होती है।

(१३) **शिल्पक**—इसमें चार अंक होते हैं और नायक ब्राह्मण होता है। इसमें श्मशान, प्रेतादि का वर्णन रहता है, जिसमें शान्त और हास्य रस को छोड़कर शेष सब रस हो सकते हैं।

(१४) **विलासिका**—इसमें एक ही अंक होता है। नायक कोई विदूषक, विट या गुणहीन व्यक्ति होता है शृंगार या हास्य रस का प्राधान्य रहता है।

(१५ **दुर्मल्लिका**—इसमें चार अंक होते हैं। पहले अंक में विट की क्रीड़ा, दूसरे में विदूषक का विलास, तीसरे में पीठमर्द या नर्मसचिव का विलास और चौथे में नागरिकों की क्रीड़ा रहती है। इन चारों अंकों का व्यापार क्रमशः ६, १०, १२ और २० घड़ी (१ घड़ी = २४ मिनिट) का रहता है।

(१६) **प्रकरणिका**—इसका नायक व्यापारी होता है और नायिका इसकी सजातीया होती है। इसकी कथा लोक प्रसिद्ध अथवा कपोल कल्पित होती है। इसमें शृंगार रस प्रधान होता है और नायक धर्म, अर्थ और काम में परायण धीर होता है। इसमें ५ अंक तक होते हैं।

(१७) **हल्लीश**—इसमें एक अंक होता है। पाँच या छः स्त्री पात्र होते हैं और एक उदात्त नायक होता है। इसमें संगीत की अधिकता रहती है।

(१८) **भाणिका**—इसमें भी एक ही अङ्क होता है। नायक मूर्ख नायिका उदात्त होता है।

नायक के भेद

नाट्यशास्त्रियों ने नायकों के ४ भेद किये हैं :—

(१) **धीरोदात्त**—नीतिवान्, उदार, धीर, गंभीर और क्षमावन्त होता है। इसके लिए वीर रस उपयुक्त होता है। जैसे—रामचन्द्र।

(२) **धीरोद्धत**—धीर, उद्धत, धूर्त, तृणास्कन्ध और क्रोधी होता है। इसके लिए रौद्र रस उपयुक्त होता है। जैसे—परशुराम।

(३) **धीर ललित**—धीर, रसिक, विलास-प्रिय और कलाप्रेमी होता है। इसके लिए श्रृंगार रस उपयुक्त है। जैसे—दुष्यन्त।

(४) **धीर प्रशान्त**—धीर, प्रशान्त कोई ब्राह्मण या वैश्य होता है। इसके लिए शान्त रस उपयुक्त है। जैसे :—माधव (मालती माधव का)।

विदूषक—वेष भूषादि के धारण करने में प्रवीण, बात बात पर हँसा देने वाला व्यक्ति विदूषक कहलाता है।

विट्—विविध कलाओं का जानकार, विलास प्रिय, कई स्त्रियों से रति करने वाला व्यक्ति विट् कहलाता है।

नर्मसचिव—विदूषक का उपकारक, मजाकिया व्यक्ति पीठ मर्द या नर्मसचिव कहलाता है।

श्रव्य-काव्य

जिस काव्य का आनंद श्रवण करने या पठन करने के प्राप्त होता है, उसे श्रव्य-काव्य कहते हैं। इसके २ भेद हैं (१) प्रबन्ध काव्य और (२) मुक्तक काव्य।

(१) प्रबन्ध काव्य

जिस काव्य की रचना प्राचीन कथा वस्तु के आधार पर की जाती है उसे प्रबन्ध काव्य कहते हैं। इसका प्रत्येक छन्द एक दूसरे से श्रृंखलित होता है। जैसे—मैथिली शरण गुप्त लिखीत—जयद्रथ-वध।

इसके २ भेद हैं—(१) महाकाव्य और (२) खण्ड काव्य।

(१) *महाकाव्य*

किसी व्यक्ति विशेष (महापुरुष) के समस्त जीवन वृत्त के आधार पर की गई रचना को **'महाकाव्य'** कहते हैं ; जिसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पदार्थों में से किसी एक पदार्थ की प्राप्ति का प्रयोजन होता है। इसमें नायक का चरित्र सर्वांगीण धीरोदात्त होना परमावश्यक है, ऐसा न करने से नायक के आदर्शस्वरूप की रचना नहीं हो सकती। इसमें शृंगार, वीर और शान्त रसों की प्रधानता होती है तथा यथास्थान समस्त रसों का सुन्दर समावेश होता है; जिसमें विविध छन्दों तथा अलंकारों के अस्तित्त्व के साथ ही ध्वनि और गुणीभूत व्यंग्य का प्राधान्य होता है। काव्य सर्ग या अनुवाक् बद्ध शैली पर न्यूनतम आठ सर्गों और भूरीतम १५ सर्गों से अधिक नहीं होना चाहिए। जैसे—

(१) तुलसी प्रणीत—'रामायण।'
(२) मैथिलीशरण गुप्त कृत—'साकेत।'
(३) हरिऔधरचित—'प्रिय-प्रवास।'
(४) प्रसाद लिखीत—'कामायनी।'
(५) द्वारकाप्रसाद मिश्र निर्मित—'कृष्णायन।'

(२) *खण्ड काव्य*

खण्ड काव्य में जीवन की छोटी छोटी घटनाओं को लेकर रचना की जाती है। इसमें यह विशेषता होती है कि यह स्वतः पूर्ण होता है। महाकाव्य के किसी अंश को खण्ड काव्य नहीं कह सकते। जैसे—

(१) गुप्त प्रणीत—'यशोधरा' और
(२) प्रसाद प्रणीत—'आंसू'।

[२] *मुक्तक-काव्य*

फुटकर काव्य रचना को मुक्तक काव्य कहते हैं। इसका प्रत्येक छन्द स्वच्छन्द होता है। 'मुक्तक' पद की व्याख्या अभिनवगुप्ताचार्य ने इस प्रकार की है—

(१) **"मुक्तामन्यते नालिङ्गितं तस्य संज्ञायां कन्"। और**

(२) **"पूर्वापर निरपेक्षेणापि हि येन रसचर्वणा क्रियते तदेव मुक्तकं"।**

अर्थात् जिसका अगले पिछले पद्यों से सम्बन्ध न हो, अपने विषय को प्रकट करने में जो स्वयं समर्थ हो और विभावानुभाव आदि से पुष्ट इतना रसाक्त हो कि पाठक या श्रावक मस्त हो जाय, ऐसे पद्य को मुक्तक कहते हैं। इसी का अन्यनाम 'उद्भट' है। जिस ग्रन्थ में मुक्तक छन्दों का संग्रह किया जाता है उसे "कोष" कहते हैं। प्रायः मुक्तक छन्द दोहे, कवित्त, भजन या गीत आदि में लिखे जाते हैं। जैसे—(१) सूर कृत 'सूर सागर' (२) विहारी प्रणीत 'विहारी—सतसई' (३) रहीम कृत 'रहीम दोहावली' (४) भूषण कविकृत 'शिवराज भूषण' और (५) विक्रमशाह लिखित—'विक्रम सतसई'।

ध्वन्यालोक के तृतीय उद्योत में आनंदवर्द्धनाचार्य ने "मुक्तकं संस्कृत प्राकृतापभ्रंशनिबद्धनम्" कहकर मुक्तक के भाषा-भेद से ३ भेद कहे हैं—(१) संस्कृतनिबद्धमुक्तक (२) प्राकृतनिबद्ध मुक्तक और (३) अपभ्रंश निबद्ध मुक्तक।

"मुक्तक" पद का लक्षण अग्नि पुराणकार से इस प्रकार दिया है—

"मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कार क्षमः सतां।"

अर्थात् जो श्लोक (पद्य) बगैर किसी पद्य की सहायता से स्वयं अपने चमत्कार प्रदर्शन करने की क्षमता रखता हो वही "मुक्तक" है।

रमणीयता की दृष्टि से काव्य के ३ भेद

रमणीय का लक्षण—रमणीय शब्द का अर्थ है रमा देने वाला या चित्त को आकर्षित कर लेने वाला। अर्थात् लोकोत्तर आनंदोत्पादक ज्ञानानुभूति को 'रमणीय' कहते हैं। इसके अंतर्गत काव्य के गुण, अलंकार, रस, और इत्यादि भी आ जाते हैं। इसी दृष्टि से काव्य के ३ भेद किये हैं—(१) ध्वनि (उत्तम काव्य), (२) गुणी भूतव्यंग्य (मध्यम काव्य) और (३) चित्र काव्य या अलंकार काव्य या अवर काव्य।

(१) ध्वनि

"एवम् घंटास्थानीयः अनुरणनात्मोपलक्षितः व्यंग्योऽप्यर्थः ध्वनिरिति व्यवहृतः"
अर्थात् 'ध्वनि' शब्द का अर्थ है 'अनुरणन्' (घंटे के 'टन्' शब्द के बाद तक होने वाली मधुर झङ्कार।)

विशेष अर्थ या व्यंग्यार्थ से जब शब्द या अर्थ अपने निजी अर्थ को छोड़कर जिस काव्य में विशेषता प्रकट करता है, उसे ही विद्वान् गण 'ध्वनि' कहते हैं—जैसा कि नीचे के श्लोक से प्रकट है :—

"यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुह सर्जनीकृत स्वार्थौ।
व्यक्तं काव्य विशेषः ध्वनिरिति सूरभिः कथितः॥

ध्वन्यालोककार श्री आनदवर्द्धनाचार्य्य ने भी प्रतीयमान अर्थ की महत्ता प्रतिपादित करते हुए लिखा है (प्रतीयमान अर्थ को ही ध्वनि कहते हैं।)

"प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीशु महाकवीनां।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।"

अर्थात् महाकवियों की वाणी में वाच्यार्थ के अतिरिक्त प्रतीयमान अर्थ इस प्रकार चमकता है, जिस प्रकार अंगना (स्त्री) के प्रसिद्ध अवयवों के अतिरिक्त लावण्य। सीधे सादे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जहाँ व्यंग्यार्थ की प्रधानता हो वहीं 'ध्वनि' होती है। यथा —

पलुनि प्रकटि बरुनीनि बढ़ि, नहीं कपोल ठहरायँ।
असुँवा परि छतियाँ छनक, छन छनाय छपिजायँ॥—बिहारी

समा०—यहाँ 'छन छनाय छपि जायं' से वियोग जनित सन्ताप का आधिक्य व्यंग्य हैं। यही यहाँ ध्वनि होगी! इसके कतिपय उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(२) प्रिय तुम भूले मैं क्या गाऊँ।
जुही-सुरभि की एक लहर से निशा बह गयी डूबे तारे।
अश्रु-बिन्दु में डूब डूब कर दृग तारे ये कभी न हारे॥—रामकुमार वर्मा
(व्यतिरेकालंकार ध्वनि)

(३) तनु विचित्र, कायर वचन, अहि-अहार मनघोर।
'तुलसी' हरिभेय पच्छधर, तातैं कह सब मोर ॥—तुलसी
(संलक्ष्यक्रम-ध्वनि)

(४) उत्साह तरलत्व स्नान प्रसाधिता क्षणवासरे सपत्नीनाम्।
आर्यया मज्जनानादरेण कथितमिव सौभाग्यम् ॥—सात वाहन
(असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि)

(५) सखी सिखावति मानविधि, सैननि बरजति बाल।
हरुये कहुमो हिय बसत, सदा बिहारीलाल ॥—बिहारी
(विवक्षित-वाच्य-ध्वनि)

(२) *गुणीभूत व्यंग्य (मध्यम काव्य)*

जहाँ व्यंग्यार्थ गुणीभूत अर्थात् अप्रधान हो या वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ दोनों समान कोटि के हों या फिर व्यंग्यार्थ से वाच्यार्थ अच्छा हो, वहाँ गुणीभूत व्यंग्य होता है। यथा—

"कौन के सुत ? बालि के वह, कौन बालि ? न जानिये।
काँख चाँपि तुन्हें जो सागर सात न्हात बखानिये ॥"

समा०—यहाँ 'काँख चाँपि सागर सात न्हात बखानिये' में यह व्यंग्य है कि तू मेरे से गड़बड़ मत करना नहीं तो मैं भी तेरी वही हालत कर दूँगा। पर यह वाच्यार्थ से अच्छा नहीं है। अतएव यहाँ गुणीभूत व्यंग्य होगा। इसके कई भेद हैं—परन्तु उनमें दो मुख्य हैं—(१) अगूढ़ व्यंग्य और (२) अपराङ्ग गुणीभूत व्यंग्य।

(१) **अगूढ़ व्यंग्य**—जब व्यंग्य बहुत ही स्पष्ट शब्दों में वर्णित होता है, तब अगूढ़ व्यंग्य होता है। जैसे—

"गुनवन्तन में जासु सुत, पहलौ गनौ न जाइ।
पुत्रवती वह मातु तब, बन्ध्या कौ ठहराइ ॥—भिखारीदास

समा०—यहाँ अंत में 'बन्ध्या कौ ठहराइ' कहकर व्यंग्य को बहुत ही स्पष्ट बना दिया गया है, अतः यहाँ "अगूढ़ व्यंग्य" होगा।

(२) **अपराङ्ग गुणीभूत व्यंग्य**—जब रस या भाव किसी अन्य रस के अङ्ग बनकर आते हैं और उसमें गुणीभूत व्यंग्य होता है तब वह अलंकार्य न रहकर केवल अलंकार ही रह जाता हैं। फिर गुणीभूत रस, गुणीभूत भाव और गुणीभूत रसाभास और भावाभास से क्रमशः रसवत्, प्रेयस् और उर्जस्वल नामक अलङ्कार होते हैं।—

[अपराङ्ग गुणीभूत व्यंग्य का उदाहरण :—]

"अयं स रशनोत्कर्षी पीनस्तन विमर्दनः।
नाभ्यूरुजघनस्पर्शी नीवीविस्त्रंसनः करः॥—(काव्य-प्रकाश)

अर्थ—[रण क्षेत्र में मरे हुए राजा भूरिश्रवा के कटे हुए हाथ को लेकर उसकी विधवा रानी कह रही हैं] अरे? यह वही हाथ है जो मेरी रशना (कटिसूत्र) को खींचता, पीन (मोटे) स्तनों का मर्दनकरता, नाभि, उरु और जघन का स्पर्श करता तथा नीवी (कटि-वस्त्र) के बन्धनों को ढीला कर देता था।

समा०—उपरोक्त उदाहरण में शृंगार रस करुण रस का अङ्ग बन गया है अतः यह '**अपराङ्ग गुणीभूतव्यंग्य**' का निदर्शन हुआ। अब हम रसवत्-आदि अलंकारों का वर्णन करेंगे।

(१) *रसवत् अलङ्कार*

जहाँ जब कोई रस या भाव किसी अन्य रस का अंग बनकर आता है तब रसवदलंकार होता है। यथा—

"पल-रुधिर राध मल थैली। कीकस वसादितें मैली॥
नवद्वार बहें घिनकारी। अस देह करें किमियारी॥१॥

समा०—यहाँ वीभत्स रस शान्त रस का अंग बन गया है। अतः यहाँ रसवदलंकार होगा।

(२) *प्रेयोलंकार (भावालंकार)*

जहाँ कोई रस या भाव किसी भाव का अंग बनकर आता है। वहाँ प्रेयोलंकार होता है। यथा—

"रावटी तिमहले थी बैठी छबिवारी बाल,
देखत तमासो गुड़ि आखिनी लड़ायो है।
परि गयो नजर हरिननैनीजू के हरि,
हरिहू के तिरछी कटाछहि चलायो है॥
मैन सरवरी तरफरी गिरि परि ऐसी,
बीच हरि धरी खरी लूटि रस पायो है।
सासु नन्द धाइ आई पाइ गहै कहै 'तोष'
आज ब्रजराज घर ऊजरौ बसायो है॥"

समा०—यहाँ भयानक रस रति स्थायी भाव का अंग बनकर आया है। अतः यहाँ प्रेयोलंकार होगा?

(३) ऊर्जस्वित् अलंकार

जहाँ कोई भाव किसी भाव या रसाभास का अंग बनकर आवे, वहाँ उर्जस्वितलंकार होता है। यथा—"हे कल्याणकारी महादेव तू मुझे दर्शन दे। तेरे दर्शन मात्र से मेरा जन्म सफल हो जायगा, क्योंकि तैने अपने क्रोधानल से कंदर्प आदि महाशत्रुओं को भस्मीभूत कर दिया है।"

समा०—यहाँ प्रभु शंकर विषयक रतिभाव रौद्ररसाभास का अंग बन गया है। अतः यहाँ ऊर्जस्वितलंकार होगा?

(४) समाहित

जहाँ कोई रस किसी भावशान्ति का अंग बनकर आवे, वहाँ समाहित अलंकार होता है। यथा—

"देखा पंथी तरुण का शव रसाल के पास।
कारण जाना अंत का हाय! बसन्त-विकास॥"—सुकवि शंकर

समा०—यहाँ विप्रलम्भ शृंगार शंकाशान्ति का अंग बन गया है। अतः यहाँ समाहित अलंकार होगा।

(१) मुरजबन्द का चित्र

"सरला बहुलारम्भ तरलालिबलारवा।
वारला बहुला मन्दकरला बहुला मला॥"
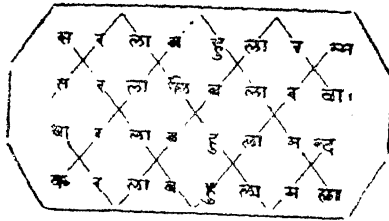
(२) पद्मबन्ध का उदाहरण

"भासते प्रतिभासार रसाभाताहताविभा।
भावितात्मा शुभा वादे देवाभा बत ते सभा॥ (पद्मबन्धः)

[काव्य-प्रकाश से]
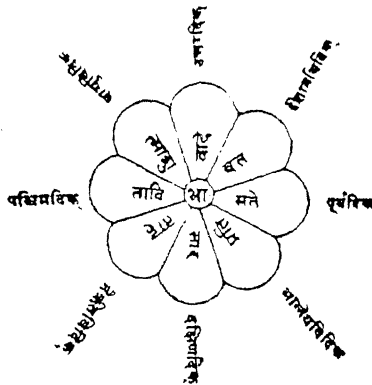
(३) चित्र या अवर काव्य

जहाँ केवल वाच्यार्थ की प्रधानता होती है, वहाँ चित्र या अवर (अश्रेष्ट) काव्य होता है। यथा—

"अंगद कूदि गये जहाँ, आसनगत लंकेश।
मनु मधुकर करहाट पर, शोभित श्यामल वेश ॥"

समा०—यहाँ 'मनु मधुकर करहाट पर, शोभित श्यामल वेष' में केवल अर्थ चमत्कार (उत्प्रेक्षालंकार) है। इसके अतिरिक्त यहाँ ध्वनि और गुणीभूत-व्यंग्य नहीं हैं। अतएव यहाँ अवर काव्य या निम्नकोटि का काव्य होगा। इसके अन्तर्गत समस्त शब्द, अर्थ और उभय अलंकारों का वर्णन किया जाता है।

विशेष—चित्रकाव्यांतर्गत ऐसी रचनाएँ भी होती हैं, जिनमें अक्षर इस ढंग से लिखे जाते हैं कि उनका आकार कमल, चक्र, पताका, खड्ग और धनुष आदि-सा बन जाता है। इनके निदर्शन ऊपर दिये गये हैं।

२. शब्द-शक्ति

व्यंग्यार्थ और वाच्यार्थ को समझने के लिए शब्द-शक्ति की जानकारी होना परमावश्यक है। वर्णों के समूह को शब्द कहते हैं। वस्तुतः सार्थक शब्द ही शब्द कहलाते हैं। जिसके द्वारा शब्द के अर्थ का बोध होता है उसे शक्ति कहते हैं।

शब्द की शक्तियाँ तीन प्रकार की होती है—(१) अभिधा (२) लक्षणा और (३) व्यञ्जना। इनसे क्रमशः तीन प्रकार के अर्थ निकलते हैं (१) वाच्यार्थ (२) लक्ष्यार्थ और (३) व्यंग्यार्थ। और जिन शब्दों द्वारा इनके ये अर्थ निकलते हैं, उन शब्दों को क्रमशः वाचक, लक्षक और व्यञ्जक कहते हैं।

(१) अभिधा

जहाँ स्मृति, बुद्धि, अनुभूति और शब्दकोषादि के आधार पर कहे हुए शब्द के सुनते ही, सबसे प्रथम जिस अर्थ का बोध होता है; उसे **वाच्यार्थ** कहते हैं। वाच्यार्थ को कहनेवाला शब्द **वाचक** कहलाता है और जिस शक्ति द्वारा यह अर्थ मालूम होता है उसे **'अभिधा'** कहते हैं। इस शक्ति के द्वारा अनेकार्थी शब्दों के एक अर्थ का बोध होता है।

वाचक शब्द चार प्रकार का होता है—(१) **जातिवाचक**—इससे किसी पदार्थ का सामान्य ज्ञान होता है। जैसे—पशु, पक्षी, नर, मादा आदि।

(२) **गुणवाचक**—इससे किसी जाति की विशेषता ज्ञात होती है। जैसे—नीलकमल, कालारंग, सुन्दर स्त्री और मूर्ख व्यक्ति।

(३) **द्रव्यवाचक**—इससे केवल एक पदार्थ का बोध होता है। जैसे—मोहन, राम, यमुना, गंगा आदि।

(४) **क्रियावाचक**—इससे पदार्थ के साध्य धर्म का बोध होता है। एक क्रिया को सिद्ध करने के लिए अनेक क्रियाएँ की जाती हैं और उन अनेक

सहायक क्रियाओं द्वारा जिस मुख्य क्रिया का आविर्भाव होता है, उसे ही **वस्तु का साध्य धर्म** कहते हैं। यथा 'स्नान करना' क्रिया के लिए कपड़े खोलना, पानी लाना, साबुन लगाना, शरीर रगड़ना आदि कई सहायक क्रियाएँ करना पड़ती है। सुतरां यहाँ "स्नान करना" हुआ वस्तु का साध्य धर्म। इसी प्रकार अन्य भी जानना चाहिए।

अभिधा द्वारा किसी शब्द के एकार्थ को निर्णय करने के लिए १४ प्रकार कहे गये हैं—(१) संयोग, (२) वियोग, (३) साहचर्य्य, (४) विरोध, (५) अर्थबल, (६) प्रकरण, (७) सामर्थ्य, (८) औचित्य, (९) देशबल, (१०) काल-बल, (११) अन्य सन्निधि, (१२) लिङ्ग, (१३) स्वर और (१४) अभिनय।

सूचना—परन्तु इनमें से संयोग से लेकर लिंग तक के १२ प्रकार ही विशेषतः प्रयुक्त होते हैं। अंतिम दो प्रकार 'स्वर और अभिनय' का सम्बन्ध क्रमशः वेद और नाटकादि से है। अतः हम यहाँ इन दो प्रकारों का वर्णन नहीं करेंगे।

(१) संयोग

जहाँ अनेकार्थी शब्द के एक अर्थ का निर्णय किसी अभिन्न वस्तु के कारण किया जाय। यथा—

"त्रिशूल-डँवरू युत लसैं आत्मभू।"

समा०—'आत्मभू' शब्द के शंकर, कामदेव, पुत्रादि अनेक अर्थ होते हैं। परन्तु 'त्रिशूल और डमरू' के संयोग से यहाँ उसका अर्थ 'शंकर' ही होगा, क्योंकि 'त्रिशूल और डमरू' उन्हीं की वस्तु है।

(२) वियोग

जहाँ अनेकार्थ वाचक शब्द के एक अर्थ का निर्णय किसी अभिन्न वस्तु के वियोग से किया जाय। यथा—

"नहीं पुरुष मनुष्यत्व बिन।"

समा०—'पुरुष' शब्द के अर्थ हैं—(१) मनुष्य (२) आत्मा (३) सूर्य और (४) विष्णु आदि। परन्तु यहाँ 'पुरुष' शब्द का अर्थ मनुष्य ही होगा, क्योंकि 'मनुष्यत्व' केवल मनुष्य में ही होता है। सूर्य आदि में नहीं।

(३) *साहचर्य*

जहाँ पर अनेकार्थ वाचक शब्द के एक अर्थ का निर्णय किसी सहचर वस्तु की सहायता से किया जाय। यथा—

"सीय राम गुह लखन समेता।"

समा०—'राम' शब्द के तीन अर्थ होते हैं—(१) बलराम, (२) रामचंद्र और (३) परशुराम। किन्तु सीय, लखन और गुह के साहचर्य से इसका अर्थ श्री रामचन्द्र ही होगा। क्योंकि सीय आदि राम के ही सहचर थे, परशुराम आदि के नहीं।

(४) *विरोध*

जहाँ किसी प्रसिद्ध विरोध या शत्रुता के कारण अनेकार्थी शब्द के एक अर्थ का निर्णय किया जाय। यथा—

"जय हो पुष्कर त्रिपुर घातक।"

समा०—'पुष्कर' शब्द के अर्थ हैं—(१) शंकर, (२) सूर्य, (३) सर्प (४) विष्णु और (५) तीर्थ-विशेष। परन्तु यहाँ पर इसका अर्थ 'शंकर' ही होगा! क्योंकि 'त्रिपुर' नामक राक्षस का विरोध केवल शंकर जी से ही था, सूर्य और विष्णु आदि से नहीं।

(५) *अर्थ-बल*

जहाँ क्रिया के अर्थ बल से किसी अनेकार्थ वाची शब्द के एक अर्थ का निर्णय किया जाय। यथा—

"भव-सागर के तरण को, भज मन तू गोपाल।"

समा०—'गोपाल' शब्द के अर्थ हैं—(१) राजा, (२) ग्वाला और (३) श्रीकृष्ण जी। यहाँ 'संसार-सागर के तरने' के अर्थ बल से 'गोपाल' का अर्थ श्री कृष्ण ही होगा। क्योंकि संसार सागर से तारने में वे ही समर्थ हैं, राजा और ग्वालादि नहीं।

(६) *प्रकरण*

जहाँ किसी प्रसंग के कारण अनेकार्थ वाचक शब्द के एक अर्थ का निर्णय हो। यथा—

"वाहिनी थी जा रही, समरांगण की ओर।"

समा०—'वाहिनी' का अर्थ होता है—(१) नदी और (२) सैना। परन्तु युद्ध के प्रसंग में इसका अर्थ 'सेना' ही होगा।

(७) *सामर्थ्य*

जहाँ किसी पदार्थ के सामर्थ्य के कारण अनेकार्थबाची शब्द के एक अर्थ का निर्णय किया जाय। यथा—

"विष पीने पर हुए, जीवित सब तत्काल।"

समा०—'विष' शब्द का अर्थ होता है—(१) जहर और (२) जल। परन्तु जीवित करने की सामर्थ्य केवल पानी में ही है, जहर में नहीं। अतः सामर्थ्य से यहाँ 'विष' शब्द का अर्थ 'जल, ही होगा।

(८) *औचित्य*

जहाँ किसी औचित्य (योग्यता) के कारण अनेकार्थ वाचक शब्द के एक अर्थ का निर्णय किया जाय। यथा—

"दीप-धूप से आमोदित था मंदिर का आँगन सारा।"

समा०—'आमोदित' शब्द का अर्थ है—(१) प्रसन्न और (२) सुगंधित। परन्तु यहाँ 'दीप धूप' से 'आमोदित' का अर्थ 'सुगंधित' ही उचित है।

(९) *देशबल*

जहाँ किसी देश विशेष के कारण अनेकार्थी शब्द के एक अर्थ का निर्णय किया जाय। यथा—

"नहीं उपजत मरु में कनक।"

समा०—'कनक' शब्द के अर्थ हैं—(१) गेहूँ (२) स्वर्ण (३) धतूरा और (४) पलाश वृक्ष। परन्तु यहाँ देशबल के कारण 'कनक' का अर्थ 'गेहूँ' ही होगा; क्योंकि मरुस्थल में गेहूँ की उपज नहीं होती।

(१०) *काल-बल*

जहाँ समय (सायं, प्रातः, रात्रि, मध्याह्न और अपराह्न आदि) के बल से किसी अनेकार्थ वाचक शब्द के एक अर्थ का निर्णय किया जाय। यथा—

"हुए प्रभाकर उदित रात्रि को।"

समा०—'प्रभाकर' शब्द के चन्द्र और सूर्य दोनों अर्थ होते हैं। परन्तु यहाँ काल (रात्रि) के बल से इसका अर्थ चन्द्रमा ही होगा। क्योंकि रात्रि को चन्द्रमा ही उदित होता है, सूर्य नहीं।

(११) अन्य-सन्निधि

जहाँ किसी के समीप रहने के कारण अनेकार्थ वाची शब्द के एक अर्थ का बोध हो। यथा—

"मद भ्राजत हरि के कपाल।"

समा०—'मद' का अर्थ होता है (१) गज-मद, और घमण्ड तथा 'हरि' शब्द का अर्थ होता है—(१) हाथी, (२) सिंह, (३) विष्णु, (४) सूर्य और (५) मेढक आदि। परन्तु 'गजमद' के सामीप्य से 'हरि' शब्द का अर्थ हाथी और 'कपाल' शब्द की सानिध्य से 'मद' का अर्थ होगा 'गजमद'।

(१२) लिङ्ग

जहाँ संयोग के सिवा किसी अन्य सम्बन्ध से शब्द के एक अर्थ का निर्णय किया जाय। यथा—

"विहँसे कुमुद देख पद्मानन।"

समा० –'कुमुद' और 'पद्मानन' के क्रमशः दो दो अर्थ हैं 'लालकमल और विष्णु' तथा 'कमलमुख' और 'लक्ष्मी-मुख'। परन्तु निर्जीव कमल कमलमुखी और लक्ष्मी के मुख को देखकर हँस नहीं सकता है। सुतरां 'कुमुद' और 'पद्मानन' का अर्थ यहाँ लिंग प्रकार से क्रमशः 'विष्णु' और 'लक्ष्मीजी का मुख' ही होगा।

(२) लक्षणा

जब अभिधा द्वारा प्राप्त अर्थ को ग्रहण करने में किसी प्रकार की बाधा आ पड़ती है, इसलिए मुख्यार्थ से सम्बन्धित कोई अन्य ग्रहण किया जाता है तो उसे **लक्ष्यार्थ** कहते हैं। लक्ष्यार्थ के वाचक शब्द को **लक्षक** कहते हैं और लक्ष्यार्थ निर्धारिणी शक्ति को लक्षणा कहते हैं। मुख्यार्थ को ग्रहण न करने

का कारण कोई कवि या लोकपरम्परा होती है अथवा कोई प्रयोजन होता है। देखिए, आचार्य मम्मट ने भी यही कहा है

"मुख्यार्थ बाधे तद्योगे रुढ़ितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते लक्षणारोपिता क्रिया॥"

अर्थात् जहाँ वाच्यार्थ को ग्रहण करने में बाधा होने पर किसी रूढ़ि या प्रयोजन वशात् मुख्यार्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ को आरोपित कर बाधा (विघ्न) दूर कर दी जाय, वहाँ लक्षणा का व्यापार समझना चाहिए। लक्षण के २ भेद हैं—(१) रूढ़ी लक्षणा और (२) प्रयोगजनवती लक्षणा।

(१) रूढ़ि लक्षणा (निरूढ़ा)

जहाँ मुख्यार्थ को ग्रहण करने में कवि या लोक परम्परा के कारण रुकावट पड़े, वहाँ रूढ़ि लक्षणा होती है। यथा—

"फली सकल मन कामना, लूटयौ अगनित चैन।"

समा०—'मनकामना' कोई वृक्ष नहीं है कि फले और चैन कोई धन नहीं है कि लूटा जा सके। पर ऐसा कहने की एक रूढ़ि सी चली आ रही है। अतएव यहाँ 'फली' का अर्थ 'पूर्ण हुई' और 'लूट्यौ' का अर्थ 'प्राप्त किया' आदि करना होगा। इसलिए यहाँ रूढ़ि लक्षणा होगी।

इसके दो भेद हैं—(१) गौणी और (२) शुद्धा।

(१) गौणी रूढ़ि लक्षणा

जब किसी विशेषगुण के लिए रूढ़ लक्षणा होती है, तब वहाँ गौणी रूढ़ि होती है। यथा—

'अचेतन थे सब नरनार।'

समा०—'अचेतन' का मुख्यार्थ है 'निर्जीव या मृत' किंतु यह 'बेहोश' के अर्थ में रूढ़ि हो गया है। 'अचेतन' एक गुण भी है अतः यहाँ गौणी रूढ़ि होगी।

(२) शुद्धा रूढ़ा

जब किसी गुण विशेषातिरिक्त अन्य किसी संबंध से लक्ष्यार्थ का बोध हो, वहाँ शुद्धा रूढ़ा होगी। यथा—

"पञ्चनद है अभिजन मेरा ।"

(पञ्चनद = पाँच नदियाँ) अभिजन = (जन्मभूमि) ।

समा०—'पंचनद' का मुख्यार्थ है 'पाँच बड़ी नदियाँ', परन्तु यह शब्द 'पंजाब प्रांत' के अर्थ में रूढ़ि हो गया है। इसी प्रकार पंकज, विहंग, और मृग शब्द के मुख्यार्थ हैं 'कीचड़ में पैदा होने वाला' 'आकाश में गमन करने वाला' और 'वनेचर पशु' परन्तु ये क्रमशः 'कमल', 'पक्षी' और 'हरिण' के अर्थ में रूढ़ि हो गये हैं। यहाँ 'पंकज' आदि शब्दों का लक्ष्यार्थ किसी गुण के कारण नहीं है, अतः यहाँ शुद्धारूढ़ा होगी ।

(२) प्रयोजनवती लक्षणा

जहाँ किसी प्रयोजन के कारण शब्द के मुख्यार्थ में बाधा पड़े, वहाँ प्रयोजनवती लक्षणा होती है। यथा—

"मैंने राम रतन धन पायो ।"

समा०—यहाँ 'रामचन्द्रजी' को 'रत्न-धन' कहा गया है। 'रत्न धन' का मुख्यार्थ है 'धन-संपत्ति', किन्तु यहाँ ईश्वर भक्ति सूचित करने के प्रयोजन से 'रतन धन' का अर्थ 'सर्व शक्तिमान्' या 'अत्यन्त सुखदाई' आदि करना होगा ।

इसके २ भेद हैं—(१) गौणी और (२) शुद्धा

(१) गौणी प्रयोजन वही लक्षणा

जहाँ सादृश्य (समान गुण या धर्म) लक्ष्यार्थ के बोध कराने में कारण हो, वहाँ गौणी प्रयोजनवती लक्षणा होगी। यथा—

"पुनपुन बँदहुँ गुरु के पद-जलजात ।"

समा०—यहाँ पर 'पद जलजात' में गौणी प्रयोजनवती लक्षणा होगी। पद (पाँव) जलजात (कमल) नहीं हो सकते। इसलिए यहाँ इसका अर्थ 'कमल के समान कोमल पाँव' आदि करना होगा। इसी प्रकार 'शशि मुख', 'कर पंकज', और 'खञ्जन-नेत्र' या 'मृगनयनी' आदि में भी 'गौणी प्रयोजनवती लक्षणा' होगी ।

इसके भी २ भेद हैं—(१) सारोपा और (२) साध्यवसाना

(१) गौणी सारोपा

जहाँ किसी वस्तु पर सादृश्य गुण के कारण, किसी अन्य वस्तु का आरोप किया जाय, वहाँ गौणी सारोपा होती है। यथा—

"प्रान पखेरू वीर के, उड़त एकही बार।"

समा०—यहाँ पर सादृश्य गुण (उड़ना) के कारण 'प्राण' पर 'पक्षी' का आरोप किया गया है। इससे गौणी सारोपा है। प्राण वस्तुतः पक्षी नहीं है, इससे मुख्यार्थ की रुकावट भी है, परन्तु प्रयोजन से लक्ष्यार्थ होगा 'पक्षी के समान उड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर चला जाने वाला।'

(२) गौणी साध्यवसाना

जहाँ केवल लक्षक शब्दों द्वारा ही किसी वस्तु का कथन कर दिया जाय (गुण सादृश्य के कारण।) इसमें केवल आरोप्यमाण ही रहता है, आरोप-विषय नहीं। यथा—

"स्वेत-पीत संग श्याम धार, अनुगत सम अन्तर।
सोहत त्रिगुन, त्रिदेव; त्रिजग, प्रतिभास निरन्तर॥"

समा०—यहाँ 'स्वेत-पीत और श्यामधार' का आरोप वर्ण सादृश्य के कारण क्रमशः गंगा, सरस्वती और यमुना जी पर है। परन्तु इन तीनों का यहाँ वर्णन नहीं किया गया है। अतः यहाँ गौणी साध्यवसाना होगी।

(२) शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा

जहाँ सादृश्य-संबंध के अतिरिक्त अन्य किसी संबंध से लक्ष्यार्थ का बोध हो, वहाँ शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा होती है। यथा—

"कर तू धर्मामृत का पान।"

समा०—यहाँ 'धर्मामृत' में धर्म और अमृत में सादृश्य संबंध नहीं है, परन्तु तात्कर्म्य संबंध है। यहाँ मुख्यार्थ की रुकावट हुई है, क्योंकि धर्म वस्तुतः अमृत नहीं है, परन्तु कार्यों की समानता है। अतः यहाँ शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा होगी।

इसके ४ भेद हैं—(१) अजहत्स्वार्था या उपादान लक्षणा, (२) जहत्स्वार्था या लक्षणलक्षणा, (३) शुद्धासारोपा और (४) शुद्धा साध्यवसाना।

(१) अजहत्स्वार्था

जहाँ प्रयोजनीय अर्थ की प्राप्ति के हेतु मुख्यार्थ को न छोड़ते हुए, किसी दूसरे अर्थ के ग्रहण करने में अजहत्स्वार्था होती है। यथा—

"धवल धाम चहुँ ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घण्टा धुनि, धमकत धौंसा करि साका॥"

[धुजा = ध्वजा; घहरत = गूंजना; धुनि = ध्वनि, धौंसा = नगाड़ा; साका = शब्द]

समा०—'ध्वजा' स्वयं नहीं लहराती, घण्टे की ध्वनि अपने आप नहीं गूँजती तथा नगाड़े का शब्द अपने आप नहीं होता; क्योंकि ये सब जड़पदार्थ हैं। अतएव यहाँ 'ध्वजा' घंटे और नगाड़े का लक्ष्यार्थ होगा 'ध्वजा पकड़े हुए कोई व्यक्ति, घंटा बजाने वाला कोई व्यक्ति तथा नगाड़ा बजाने वाला कोई व्यक्ति। इन सब में क्रमशः ध्वजा, घंटा और नगाड़ा उपादान भी है, और इन शब्दों ने अपना मुख्यार्थ भी नहीं छोड़ा है। क्योंकि उसी के संबंधित व्यक्ति का आक्षेप किया गया है। यहाँ सादृश्य से अतिरिक्त संबंध है, इससे शुद्धा है और प्रयोजन है गंगा की महत्ता प्रकट करना।

(२) जहत्स्वार्था

जहाँ मुख्यार्थ को छोड़कर अन्य अर्थ ग्रहण कर लिया जाता है, वहाँ जहत्स्वार्था होती है। अजहत्स्वार्था में शब्द अपना मुख्यार्थ नहीं छोड़ता, उसी से संबंधित कोई अन्य अर्थ लगा लिया जाता है; परन्तु जहत्स्वार्था में शब्द अपने मुख्यार्थ को बिलकुल छोड़ देता है। यथा—

"भानुताप उपजावे जिसको। वह ज्वाला न जलावे किसको॥
व्याकुल जीव-समूह निहारे। हाय ! हुताशन से सब हारे॥"

समा०—'हुताशन' का मुख्यार्थ है 'यज्ञ की अग्नि'। किन्तु यहाँ इसका लक्ष्यार्थ होगा 'प्रचण्ड धूप'। 'हुताशन' शब्द ने अपने अर्थ को एकदम छोड़ दिया है, इससे यहाँ जहत्स्वार्था होगी।

(३) सारोपा शुद्धि प्रयोजनवती लक्षणा

जहाँ किसी वस्तु का किसी के सादृश्य संबंध न होने पर भी एक वस्तु का दूसरी पर आरोप किया जाय। यथा —

"निर्धन के धन राम। निर्बल के बल राम॥"

समा०—यहाँ श्री रामचन्द्रजी पर क्रमशः 'धन और बल' का आरोप किया गया है। धन और बल का मुख्यार्थ तो होता है 'सम्पत्ति और शक्ति'। परन्तु रामचन्द्रजी 'संपत्ति और शक्ति' नहीं हैं, अतएव इसका लक्ष्यार्थ होगा 'सुखद और रक्षक'। अतएव यहाँ सारोपा शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा होगी।

(४) साध्यवसाना शुद्धा

जहाँ आरोप्यमाण (जिन शब्दों से आरोप किया जाय) ही रहता है, आरोप विषय (जिसपर आरोप किया गया हो) नहीं रहता, वहाँ साध्यवसाना शुद्धा होती है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि दोनों में सादृश्य संबंध न हो। यथा—

"बैरिनि कहा बिछावति, फिरि फिरि सेज कृसान।
सुन्यो न मेरे प्रानधन, चहत आज कहुँ जान॥"

समा०—यहाँ 'बैरिनि' शब्द 'सखी' के लिए और 'कृसान' (कृशानु) शब्द 'फूलों' के लिए आया है। केवल आरोप्यमाण रहने से साध्यवसाना और सादृश्य संबंध के न होने के कारण शुद्धा प्रयोजनवती है।

(३) व्यञ्जना

वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों के अतिरिक्त जिस अद्भुत अर्थ का बोध होता है, उसे व्यंग्यार्थ कहते हैं। जिस शब्द से यह अर्थ प्राप्त होता है उसे **व्यञ्जक** कहते हैं और जिस शक्ति के द्वारा व्यंग्यार्थ का ज्ञान होता है, उसे व्यञ्जना कहते हैं। इसके २ भेद हैं—

(१) शाब्दी और (२) आर्थी

(१) शाब्दी व्यञ्जना

जहाँ व्यञ्जना शब्द पर निर्भर होती है, वहाँ शाब्दी व्यञ्जना होती है। यथा —

"चिर जीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।
का घटि, यें वृषभानुजा. वै हलधर के वीर॥"

[वृषभानुजा = राधा और गाय] [हलधर = बलराम और बैल]

समा०—यहाँ 'हलधर' और 'वृषभानुजा' में श्लेष होने के कारण एक गुप्त परिहास व्यंग्य है, परन्तु वह इन व्यंजक शब्दों पर ही निर्भर है, यदि इनकी जगह इन्हीं के पर्यायवाची शब्द रख दिये जायँ तो फिर यह चमत्कार न रह जायगा। यहाँ व्यंजना शब्द पर निर्भर है, अतः यहाँ शाब्दी व्यंजना होगी। इसके २ भेद हैं—(१) अभिधामूला और (२) लक्षणामूला।

(१) अभिधामूला

जहाँ अनेकार्थी शब्दों का अभिधा द्वारा एक अर्थ निश्चय हो जाने पर भी अन्य कोई अद्भुतार्थ निकले, वहाँ अभिधामूला शाब्दी व्यञ्जना होती है। यथा—

"आरंजित हो उषा सुंदरि में सुखमाना।
लोहित आभावलित वितान अधर में ताना॥"

समा०—यहाँ अभिधा से उषाःकाल का वर्णन निश्चित हो गया है, किन्तु आरंजित (पुलकित, लोहित) उषा सुंदरि (उषानामक स्त्री; उषा या प्रभात रूपी स्त्री) अधर (ओष्ठ; आकाश) और वितान (साड़ी; चँदोवा) शब्दों के भिन्नार्थ होने से एक नायिका संबंधी अर्थ भी निकल रहा है। अतः यहाँ अभिधामूला शाब्दी व्यञ्जना होगी।

(२) लक्षणामूला

जहाँ लक्ष्यार्थ द्वारा एक अर्थ निश्चित हो जाने पर भी कोई दूसरा विलक्षण अर्थ निकलता हो, वहाँ लक्षणामूला व्यञ्जना होती है। यथा—

"लालोष्णीश श्रीजनक को लख, तत्काल झगड़ा मिट गया।"

[लालोष्णीश श्रीजनक = (१) लाल पगड़ी पहिन हुए श्रीजनक नामक सिपाही और (२) लाल पगड़ी पहिने हुए श्रीमान् पिताजी।]

समा०—यहाँ लक्षणा से 'सिपाही को देखकर दो लड़ते हुए व्यक्तियों का झगड़ा शान्त होने का' अर्थ निश्चित हो जाने पर भी एक दूसरा विचित्र अर्थ निकल रहा है कि 'बाहर से आते हुए पिताजी को देख दो झगड़ते हुए सहोदर भाईयों में समझौता हो गया।' अतः यहाँ लक्षणामूला शाब्दी व्यञ्जना होगी।

(२) आर्थी व्यञ्जना

जहाँ व्यंजना अर्थ पर निर्भर होती है, वहाँ आर्थी व्यञ्जना होती है। यथा—

"अबला तेरे जीवन की है, करुण कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी॥"

समा०—इसमें माता के स्नेह और दैन्य का चित्रण व्यंग्य है, जो कि शब्दों गत नहीं अपितु उसके अर्थ पर निर्भर है। यदि उपर्युक्त शब्दों के स्थल पर उनके प्रतिशब्द भी रख दिये जायँ तो भी चमत्कार नष्ट नहीं होता। अतः यहाँ आर्थी-व्यञ्जना होगी। इसके नौ प्रकार कह गये हैं—

"वक्तृ, बोधव्य काकूनां वाक्य वाच्यान्यसंन्निधेः।
प्रस्ताव, देश, कालादेर्वैशिष्ट्यात्प्रतिभाजुषां।
योऽर्थस्यान्यार्थधीहेतुर्व्यापारो व्यक्तिरेवसा॥"

अर्थात् (१) वक्तृवैशिष्ट्य, (२) बोधव्य वैशिष्ट्य, (३) काकु वैशिष्ट्य, (४) वाक्य वैशिष्ट्य, (५) वाच्य वैशिष्ट्य, (६) अन्यसान्निध्य वैशिष्ट्य, (७) प्रस्ताव-वैशिष्ट्य, (८) देश वैशिष्ट्य, और (९) काल वैशिष्ट्य।

उदाहरण—

काकुवैशिष्ट्य—"रसिक अपूरब हो पिया, बुरो कहत नहीं कोय।"

समा०—इसमें नायिका नायिक को 'अपूर्व रसिक' कह रही है, किन्तु जिस कंठ ध्वनि या काकु से उसने कहा है उससे नायक की 'अरसकिता व्यञ्जित होती है। अतः यहाँ काकु वैशिष्ट्यार्थी व्यञ्जना होगी। इसी प्रकार अन्य भी जानना चाहिए।

विशेष ज्ञातव्य

तात्पर्य वृत्ति (शक्ति)—कतिपय आचार्यों ने उपर्युक्त वर्णित त्रय शक्तियों के अतिरिक्त तात्पर्य नाम की शब्दशक्ति भी मानी है। इनके मतानुसार आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि पूर्ण शब्दों से वाक्य का अर्थ जाना जाता है, अकेला शब्द पूरा अर्थ देने में असमर्थ होता है। उसे ही ये तात्पर्य वृत्ति कहते हैं।

(१) **आकांक्षा**—जहाँ शब्दों के अर्थ की प्राप्ति के हेतु दूसरे शब्दों की चाह रहती है, उसे आकांक्षा कहते हैं। जैसे—'बन्दर' या 'पानी' कह देने से किसी अर्थ का बोध नहीं होता है, यदि इन शब्दों में आकांक्षित शब्द 'बोलता है' और 'बरसता है' जोड़ दिये जायँ तो वाक्यार्थ की पूर्ति हो जाती है।

(२) **सन्निधि**—जहाँ शब्दों से अर्थ की प्राप्ति के हेतु उससे संबंधित किन्हीं अन्य शब्दों के जोड़ने की आवश्यकता होती है; उसे सन्निधि कहते हैं। जैसे—'जूते' और 'पत्थर' शब्द कह देने से किसी अर्थ का बोध नहीं होता है, यदि इन शब्दों में इनके समीपवर्ती शब्द 'दरवाजे के पास रखे हुए' और 'सड़क पर पड़ा हुआ' जोड़ दिये जायँ तो वाक्यार्थ की पूर्ति हो जाती है।

(३) **योग्यता**—जहाँ दूरान्वित शब्दों का अन्वय उनके सहचर शब्दों के साथ करने के लिए, उन्हें यथास्थल रखने की आवश्यकता हो। यथा—'वह है खेल रही और मोहिनी नहाता है'। ऐसा कहने से कोई अर्थ न होगा, परन्तु उसे इस प्रकार रख दिया जाय कि, उससे ठीक ठीक अर्थ की प्राप्ति हो जाय तो वहाँ योग्यता की जरूरत होगी। जैसे कि—

'वह नहाता है और मोहिनी खेल रही है।'

३. ध्वनि

"यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुह सर्जनीकृत स्वार्थो ।
व्यक्तं काव्य विशेषः ध्वनिरिति सूरभिः कथितः ।।

अर्थात्—जब शब्दार्थ अपने निजी अर्थ को छोड़कर जिस विशेषार्थ (व्यंग्यार्थ) से काव्य में विशेषता प्रकट करता है, उसे ही विद्वान्गण **ध्वनि** कहते हैं । यथा—

"जो वाके तन की दसा देख्यौ चाहत आप ।
तौ बलि नैकु बिलोकिए चलि औचक चुपचाप ।।"

समा०—यहाँ 'औचक' (अचानक) और 'चुपचाप' शब्द से यह ध्वनि निकलती है, कि यदि आप अचानक और चुपचाप न चले तो नायिका को आप के शुभागमन की खबर हो सकती है और खबर होने से आप उसकी वास्तविक दशा का अवलोकन न कर सकेंगे । तस्मात् यही अभीष्ट है कि आप चुपचाप बगैर किसी को कहे और बगैर समय निश्चित किये उसके घर पर जायँ ।

ध्वनि के २ भेद हैं—(१) अभिधामूलक या विवक्षितअन्यपरवाच्य और
(२) लक्षणामूलक या अविवक्षितवाच्य ।

(१) **अभिधामूलक (विवक्षितान्यपरवाच्य)**—जहाँ वाच्यार्थ की विवक्षा (जरूरत) हो, वहाँ अभिधामूलक ध्वनि होती है । यथा—

"तू साँचो द्विजराज है, तेरी कला प्रमान ।
तो पै शिव किरपाकरी, जानत सकल जहान ॥"

[द्विजराज = चन्द्रमा और भूषणकवि] [कला = चन्द्रकला और काव्यकला] [शिव = शंकरजी और छत्रपति शिवाजी]

समा०—यहाँ 'द्विजराज, कला और शिव' शब्द श्लिष्ट होने से क्रमशः चन्द्रमा और भूषण कवि संबंधी दो अर्थ निकल रहे हैं **और** इन अर्थों की प्राप्ति के लिए वाच्यार्थ की यहाँ विवक्षा भी है, अतः यहाँ अभिधामूला ध्वनि

होगी। इसके २ भेद हैं—(१) संलक्ष्यक्रमव्यंग्य और (२) असंलक्ष्यक्रमव्यंग्य (रस ध्वनि)।

(१) संलक्ष्य क्रम व्यंग्य

जहाँ व्यंग्यार्थ तक पहुँचने का क्रम लक्षित हो, वहाँ संलक्ष्य क्रम व्यंग्य होता है। यथा—

"अंग विचित्र, द्विरसन, उरग, विषधारी जो होय।
शंभु तेहि आदर दियो, तब पूजत सब कोय॥"

(विचित्र = रंगविरंगा) (द्विरसन = दो जीभ वाला, चुगलखोर) (उरग = हृदय से गमन करने वाला)

समा०—सर्प का शरीर विचित्र होता है, उसकी दो जिह्वाये होती हैं (एक मृषाकथन के लिए और एक सत्यकथनार्थ) पाँव रहित होता है और कालकूट का धारक होता है, एतदर्थ अस्तुत्य है। परन्तु शंकरजी उसको अपने शरीर पर आभषणवत् स्थान देते हैं, उसका आदर करते हैं। इससे लोग भी उसे आदर देते हैं अर्थात् उसकी अर्चना (वंदना) करते हैं।

यहाँ पर तात्पर्य केवल इतना है कि 'शंकरजी जिसका आदर करते हैं, जमाना भी उसका आदर करता है।' इससे शंकरजी के प्रति अगाध प्रेम व्यञ्जित होता है।

यहाँ इस व्यंग्यार्थ तक पहुँचने का क्रम लक्षित है, अतः यहाँ **'संलक्ष्य-क्रमव्यंग्य'** होगा। इसके २ भेद हैं—(१) वस्तुध्वनि और (२) अलंकारध्वनि।

(१) वस्तु ध्वनि

जब अर्थशक्ति के आधार पर वस्तु से वस्तु की ध्वनि निकलती है, तब वस्तु ध्वनि होती है। यथा—(जब हनुमानजी लंका में रावणादेश से पकड़कर बाँध दिये जाते हैं, तब रावण उनसे प्रश्न करता है)—

"कैसे बधायो ?"

(इस प्रश्न का उत्तर हनुमानजी इस प्रकार देते हैं)—

"जु सुंदरि तेरी छुई दग सोवत पातक लेख्यो।"

समा०—यहाँ हनुमानजी द्वारा दिये गये उत्तर में यह ध्वनि निकलती है कि "मैंने तो पर स्त्री को केवल देखा ही है, जिससे मेरी यह दशा हुई परन्तु तू तो पर स्त्री (सीता) को अपने यहाँ ले आया है; तेरी उससे भी बुरा दशा होगी।" अतः यहाँ **वस्तु ध्वनि संलक्ष्यक्रमव्यंग्य** होगा।

(२) अलंकार ध्वनि

जहाँ किसी अलंकार के कारण किसी प्रकार की ध्वनि निकलती है, वहाँ अलंकार ध्वनि होती है। यथा—

"कहा लड़ैते दृग करे, परे लाल बेहाल !
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट, कहूँ मुकुट बनमाल ॥"

समा०—यहाँ 'कहा लड़ैते दृगकरे, परे लाल बेहाल' में व्याजस्तुति अलंकार से नायिका के 'तीखे नेत्रों' की ध्वनि निकलती है। अतः यहाँ व्याजस्तुति अलंकार ध्वनि होगी ! व्याजस्तुति अलंकार वहाँ होता है, जहाँ किसी वस्तु की ऊपर से बड़ाई-सी ज्ञात होती हो परन्तु वास्तव में हो उसकी निन्दा। यहाँ भी तुने क्या लड़ैते (लड़ाकू) नैत्र कर रखे हैं, जिसकी कि चोंट खाकर वेचारे 'लाल' अभी तक 'बेहाल' (बेचैन) पड़े हुए हैं।" में व्याज स्तुति है।

(२) असंलक्ष्यक्रम ध्वनि (रसध्वनि)

जहाँ व्यंग्यार्थ तक पहुँचने का क्रम लक्षित न हो, वहाँ यह ध्वनि होती है। यथा—

"रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेश।
भार धरै संसार को, तऊ कहावत शेष ॥"

समा०—इस कथन से बड़े व्यक्तियों की श्लाघा सूचित होती है अपितु—'भार धरै संसार को तऊ कहावत शेष'—इस व्यंग्यार्थ तक पहुँचने का क्रम अलक्षित है। दोहे के पढ़ते ही भाव तुरन्त विदित हो जाता है, सुतरां यहाँ असंलक्ष्यक्रम ध्वनि होगी।

विशेष—इसके अंतर्गत रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्ति, भावसंधि, और भावशबलता माने गये हैं। जिसका साकीर्ण वर्णन **रस-प्रकरण** में किया गया है।

(२) लक्षणामूला या अविवक्षितवाच्य ध्वनि

जहाँ वाच्यार्थ की विवक्षा (आवश्यकता) न हो, वहाँ लक्षणामूला ध्वनि होती है। यथा—

"जननि के जिय की खिगारी व्यथा,
जननि ही जिय है कुछ जानता।"

समा०—यहाँ अंतिम 'जननि' शब्द का तात्पर्य है 'पुत्रवियोग को जानने वाली', न कि 'माता'। इससे स्पष्ट है कि यहाँ जननी के वाच्यार्थ (माता) की विवक्षा नहीं है। इसके भी दो भेद हैं—(१) अर्थान्तर संक्रमित और (२) अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य ध्वनि।

(१) अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि

जहाँ अर्थ प्रसंगानुसार वाच्यार्थ को छोड़कर अन्यार्थ में संक्रमण या गमन करता है, वहाँ यह ध्वनि होती है। यथा—

"कोकिल कोकिल लेखयतु, और काक एकाक्ष।"

समा०—यहाँ पर 'कोकिल' शब्द में नायिक की कठोरता पर व्यंग्य है। यह शब्द वाच्यार्थ (कोयल) को छोड़कर अन्य अर्थ (कर्कश हृदय) में संक्रमण कर रहा है। अतः यहाँ अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि होगी।

(२) अत्यन्त तिरस्कृत वाच्य-ध्वनि

जहाँ वाच्यार्थ की अत्यन्त उपेक्षा या तिरस्कार वर्णित हो, वहाँ अत्यन्त-तिरस्कृत वाच्य ध्वनि होगी। यथा—

"अहो ! सुधाधर प्यारे, नेह-निचोर।
देखन ही को तरसे, नयन चकोर॥"

समा०—यहाँ 'सुधाधर' में नायक की कुटिलता व्यंजित होती है, जिसका वाच्यार्थ है 'चन्द्रमा'; अपितु यहाँ इस वाच्यार्थ की एकदम उपेक्षा कर दी गई है। अतः यहाँ अत्यन्त-तिरस्कृत वाच्यार्थ ध्वनि होगी।

---

४. रस-सिन्धु

रस—'रस' का शाब्दिक अर्थ है 'आनन्द'।

किसी काव्य (गद्य, पद्य और चम्पू) को पढ़कर, श्रवणकर अथवा प्रेक्षण करने पर, जो पाठक, श्रावक और प्रेक्षक को जो लोकोत्तर आनंद प्राप्त होता है उसे 'रस' कहते हैं। 'अग्नि पुराण कार ने रस को काव्य का जीवन और रसवाद के प्रधान आचार्य सर्वश्री विश्वनाथ ने' काव्य की आत्मा कहा है। देखिए—

(१) **"वाग्वैदग्ध्य प्रधानेऽपि रस एवात्रजीवितं।"** —'अग्निपुराण'

(२) **'रस एवात्मा साररूपतया जीवनाधायको यस्य।**

तेन विना तस्य काव्यत्वाभावस्य प्रतिपादितत्वात्।' साहित्य-दर्पण

महर्षि भरत ने भी अपने नाट्यशास्त्र में 'रस' की व्याख्या करते हुए लिखा है—

"विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रस निष्पत्ति।"

अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। आगे चलकर इसी 'निष्पत्ति' शब्द के भिन्नार्थ के कारण उत्तराचार्यों में कई मत-भेद हो गये।

(१) भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद

भट्टलोल्लट ने 'निष्पत्ति' और 'संयोग' का अर्थ 'उत्पत्ति और संबंध' से करके उत्पत्तिवाद की सृष्टि की। आपका कथन है कि रसोत्पत्ति नायक नायिकादि से होती है। नट नटिनी आदि अलंकृत होकर विविध हाव भाव दर्शाते हैं, उन्हीं में रसास्तित्त्व होता है। दर्शक और श्रावक तो केवल आश्चर्यान्वित होकर आनंदानुभूति करते हैं, उनमें रस का अस्तित्त्व नहीं होता। परन्तु इस उत्पत्तिवाद को उत्तराचार्यों ने उररीकृत नहीं किया, क्योंकि नट तो केवल अभ्यासवशात् हँसता है, रोता है, संभाषण करता है और छद्मवेषादि धारण करता है। उसे वास्तविक रस दशा नहीं हो सकती। यदि उसे वास्तविक रसदशा प्राप्त हो जाय तो फिर वह अपनी कला का प्रदर्शन करने में पूर्ण असमर्थ रहेगा।

(२) श्री शंकुक का अनुमितिवाद

श्रीमान् शंकुक सूरि ने 'निष्पत्ति' का अर्थ 'अनुमिति' करके रस को अनुमाप्य और विभावानुभाव को अनुमापक बतलाया है। आपका कथन है कि स्थायी भाव नट में नहीं होता, वह तो नायक में होता है। नट को अभिनय करते हुए देखकर दर्शक वा श्रावक नट को ही नायक समझकर इस सुखद भ्रम में अपने आप को भूल जाते हैं, अर्थात् रसदशा को प्राप्त होते हैं। यह मत भी ग्राह्य नहीं हो सकता क्योंकि केवल अनुमान के आधार पर हृदय में साधारणीकरण का भाव नहीं आ सकता और जब हृदय में साधारणीकरण का भाव नहीं आ सकता तो दर्शक वा श्रावक कदापि रसदशा को प्राप्त नहीं हो सकते।

(३) भट्टनायक का भुक्तिवाद

भट्टनायक ने 'निष्पत्ति' शब्द का अर्थ 'भोग' करके हृदय में साधारणीकरण होने तक की प्रक्रिया में 'अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व' नामक त्रय शक्तियों की प्रधानता की है।

सर्व प्रथम किसी को देखने तथा पढ़ने से जिस सामान्य अर्थ का बोध होता है, उसे **अभिधा** कहते हैं, और जब वह विभावानुभावादि से मनुष्य मात्र की रसानुभूति के योग्य बन जाता है, तब उसे '**भावकत्व**' कहते हैं। भावकत्वानंतर साधारणीकृत स्थायी भावों से जब रसानुभूति होने लग जाती है' तब उसको **भोजकत्व** कहते हैं। यह मत किसी किसी को मान्य है और किसी किसी को नहीं।

(४) अभिनवगुप्तपादाचार्य का अभिव्यंजनावाद

अभिनवगुप्तपादाचार्य के मतानुसार 'संयोग' का अर्थ है 'व्यंजित होना' और 'निष्पत्ति' का अर्थ है 'आनंदरूप में प्रकाशित होना। भरत मुनि ने परिभाषा दी है कि जो काव्यार्थ को भावना का विषय बनाले, वही भाव है। काव्यार्थ की अर्थ मुख्यार्थ से है। यही मुख्यार्थ ही रस का भावक है, क्योंकि इसी से रस व्यंजित होता है। रस का मार्ग भी आस्वादन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसमें योग का भाव तो पहले से ही जाग्रत रहता है। सुतरां 'भोजकत्व' को

पृथग्तत्त्व मानना अनुचित है, क्योंकि वह अनंतर ध्वनि द्वारा सम्पन्न हो जाता है। इस प्रकार अभिनवगुप्ताचार्य भट्टनायक की बात का समर्थन तो करते हैं परन्तु उनके द्वारा वर्णित 'अभिधा, भावकत्व और भोजकत्व' शक्तियों का बहिष्कार भी करते हैं। आपका कथन है कि भाव तो सुषुप्तावस्था में हृदयोपनीत होते हैं, विभावानुभावादि के कारण उनपर जगतीतल पर जो आवरण अच्छादित रहता है—वह अनाच्छादित हो जाता है। तब भाव व्यंजित होने लगते हैं और आत्मा एक दिव्यज्योति से उद्भासित हो उठता है। आपके इस मत को बाद के सब आचार्यों ने स्वीकृत किया है।

रसवादियों ने काव्य के २ अंग (१) अनुभूति और (२) अभिव्यक्ति में से प्रथमांग (अनुभूति) को प्रधानता दी। बिना अनुभूति की प्रधानता के जिसमें रसात्मकता होती है, उसमें का काव्य का अस्तित्त्व नहीं होता। रसात्मकता ही पाठक अथवा श्रोता के हृदय में सुषुप्त मनोवेगों को जागृत करके वह पर्याय प्रस्तुत कर देती है, जिसमें वह दिव्य आनंद का अस्वादन करता है।

यदि काव्य में रसात्मकता का अभाव होता है तो वह काव्य, काव्य कहलाने के सर्वथा अयोग्य है। उदाहारणतः एक आम्रफल है, लोग उसी समय तक उसकी ओर आकर्षित होते हैं, जब तक उसमें रस है। परन्तु रस के निकाल लेने के बाद कोई उसकी ओर दृष्टिपात तक नहीं करता। ठीक उसी प्रकार काव्य कितना ही श्रेष्ठ क्यों न लिखा गया हो प्रत्युत जब तक कवि उसमें रस का समावेश नहीं करता, तब तक वह काव्य अधूरा ही है।

ध्वनिकार श्रीमदानंदवर्द्धनाचार्य ने भी काव्य में रस की उपयोगिता सिद्ध करते हुए लिखा है—

"दृष्टपूर्वा अपि हयर्थाः काव्ये रस परिग्रहात्।
सर्वे नवा इवाभान्ति मधुमास इव द्रुमाः॥"—ध्वन्यालोक

अर्थात् जिस प्रकार मधुमास में वृक्ष अधिक चित्ताकर्षक और नवीन दृष्टिगोचर होते हैं, उसी प्रकार काव्य में रस का आश्रय ग्रहण कर लेने से पूर्वदृष्ट अर्थ भी नवीन और सौम्यरूप धारण कर लेते हैं।

रस के अंग प्रत्यंग

रस का प्रादुर्भाव भावों से होता है और वे भाव दो प्रकार के होते हैं—(१) संचारी या व्यभिचारी भाव और (२) स्थायी भाव।

(१) सञ्चारी भाव

उन संचलित भावों को कहते हैं, जिनका साधारणतः मस्तिष्क में आविर्भाव और विलीनीकरण होता रहता है। साहित्यदर्पणकार ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है—

"विशेषादाभिमुख्येन चरणाद्व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्न निर्मग्नास्त्रयस्त्रिंश्च तद्भिदाः॥"

अर्थात्—संचारीभाव विशेष रूप से नवों रसों में आने जाने के कारण 'व्यभिचारी' कहलाते हैं जो साधारणतः स्थायी भाव में विमग्न और अंतर्हित होते रहते हैं। इनके ३३ भेद होते हैं—(१) निर्वेद, (२) ग्लानि (३) शंका (४) गर्व (५) चिंता (६) मोह (७) विषाद (८) दैन्य (६) असूया (१०) मद (११) आलस्य (१२) श्रम (१३) उन्माद (१४) अवहित्थ (१५) चपलता (१६) अपस्मार (१७) भय (१८) व्रीड़ा (१६) जड़ता (२०) मृत्यू (२१) हर्ष (२२) धृति (२३) मति (२४) आवेग (२५) उत्कण्ठा (२६) निंद्रा (२७) स्वप्न (२८) व्याधि (२६) उग्रता (३०) अमर्ष (३१) विमर्ष (३२) वितर्क और (३३) स्मृति इनकी उत्पत्ति काव्य के प्रेक्षण, श्रवण या अवलोकन से कही गई है। यद्यपि संचारी भाव क्षण-क्षण नष्ट होते रहते हैं प्रत्युत ये अति प्रभावोत्पादक माने गये हैं। क्योंकि ये उन स्थायी भावों के जनक होते हैं, जिनके आधार पर रस की भित्ति खड़ी की जाती है। इन्हीं का अन्य,नाम व्यभिचारी भाव है।

(१) निर्वेद या शम

जब आपत्ति, ईर्ष्या और ज्ञान के द्वारा मस्तिष्क में खेद की उत्पत्ति होती है, तब उसे निर्वेद भाव कहते हैं। यथा—

"चहुँगति दुखजीव भरे हैं। परिवर्तन पंच करे हैं।
सब बिधि संसार असारा। या में सुख नांहि लगारा॥"

(२) ग्लानि

जब शारीरिक व मानसिक दुःख के कारण, अंगों की शिथिलता होने से, किसी भी काम में रुचि नहीं होती, उसे ग्लानी कहते हैं। यथा—

"मलिन वसन विवर्ण विकल, कृश शरीर दुख भार।
कनक कलप बरबेलि बन, मानहुँ हनी तुषार॥"

(३) शंका

जहाँ स्वतः की अनभिज्ञता के कारण हृदय में शोच की उत्पत्ति हो, उसे शंका कहते हैं। यथा—

"न मँडराये मधुकर कहूँ, लखि मम नीरज अंक।
सोचति यह हिय पद्मिणी, निशदिन रहे सशंक॥"

(४) गर्व

जब स्वगुण-ग्राम को देखकर हृदय में घमण्ड की उत्पत्ति हो, उसे गर्व कहते हैं। यथा—

"गेंद करेउँ मैं खेलको, हरगिरि केशोदास।
शीश चढ़ाये आपने, कमल समान सहास॥"

(५) चिंता

जहाँ अहित या अनिष्ट हो जाने पर मन में व्याकुलता का प्रादुर्भाव हो, वहाँ चिंता होती है। यथा—

"कोमल कंजमृणाल पर, कियौ कलानिधि वास।
कबको ध्यान रह्यौ जो धरि, मित्र-मिलन की आस॥"

(६) मोह

जब अपना शरीर अपने आपे के बाहर हो जाता है, तब वहाँ मोह होता है। यथा—

"उर उपल धरूँगी और क्या मैं करूँगी।
विधिवश दुःख ऐसे देख के ही मरूँगी॥"

(७) विषाद

जहाँ अत्यन्त दुःख की अनुभूति हो और उसके निवारणार्थ यत्न न हो सके, वहाँ विषाद भाव होता है। यथा—

"सरसिज तन हा हा कण्टकों में खिंचेगा ।
घृत, मधु, पय प्याला स्वेद ही से सनेगा ॥"

(८) दैन्य

दुःख, दारिद्र और विरहादि से जब हृदय द्रवित होने लग जाता है, तब वहाँ दैन्य भाव होता है । यथा—

"सीस पगा न झगा तन में प्रभु जाने को आहि बसे केहि ग्रामा ।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पाँय-उपानह की नहीं सामा ॥"

(९) असूया

परसुख को देखकर जब अपना हृदय दुःख का अनुभव करने लगे तब असूया भाव होता है । यथा—

"खाय मुठी तिसरी अब नाथ, कहाँ निजवास की आस बिसारी ।"

(१०) मद

धन, यौवन, सौंदर्यादि से जहाँ हर्षयुत क्षोभ होता है । उसे ही मद कहते हैं । यथा—

"रूपमद और वित्तमद, अरु जोबन मद पाइ ।
ऐसे मूढ़ मदभृत् नर, को सकै तेहि सिखाइ ॥"

(११) आलस्य

गर्भ, व्याधि, विबोध (रात्रिजागरण) आदि के कारण जब मन हतोत्साह होने लगता है, तब वहाँ आलस्य भाव होता है । यथा—

"दृग थिरकौं हैं अधखुले, देह थकौंहैं ढार ।
सुरत-सुखित सी देखियतु, दुखित गरभ के भार ॥"

(१२) श्रम

यात्रा और व्यायामादि से उत्पन्न क्लांति (थकावट) को श्रम कहते हैं । यथा—

"चलत चलत जब थकित भये, लखन जानकी राम ।
तब जटाल विटप के तट, कीन्हौं सब आराम ॥"

(१३) उन्माद

विषम विषादवशात् जब नायक या नायिका उन्माद (पागलपन) दशा को प्राप्त हों।

"छिन रोवति, छिन हँसि उठत, छिन बोलति, छिन मौन।
छिन छिन पर छीनी परति, भई दशा धौं कौन ॥"

(१४) अवहित्थ (आकृति गोपन)

जब वैदग्ध्य से निज के प्रकृत स्वरूप का गोपन (छिपाव) किया जाय। यथा—

"सखि शुक कीन्ह्यौ कर्म यह, दंतनि जान अनार।"

(१५) चापल्य

जब रागद्वेशादि की तीव्रता से मन स्थिर न रह सके। यथा—

"घरलौं सरणि पुनि घर तक, आवै बारम्बार।
प्रेमपाश में बद्ध हो, लखमुख त्रपा गँवार ॥"

(१६) अपस्मार (मृगी)

जब मिरगी जैसा अवस्था हो जाय, वहाँ अपस्मार होता है। दीर्घ श्वास लेना, गात्रकंपन, मुखादि रन्ध्र से जलप्रवाहादि इसके प्रमुख लक्षण हैं। यथा—

"लखि बेहाल एकै कहत, भई कहूँ भय-भीति।
यकै कहत मिरगी लगी, लगी न जानत प्रीति ॥"

(१७) भय

अचानक अनिष्ट हो जाने से चित्त के व्यग्र होने को भय कहते हैं। यथा—

"दोनों भाई जा, साथ लिए कलदार।
सहसा चौंकि दुखित हुए, लख कज खीसा भार ॥"

(१८) व्रीड़ा

निंदा आदि के डर से हृदय में संकोच उत्पन्न होने को व्रीड़ा कहते हैं। यथा—

"प्रथम समागम की कथा, बूझी सखिन जु आइ।
मुख नाइ सकुचाइ जिय, रही सुघूँघट नाइ॥"

(१९) जड़ता

अनिष्ट या इष्ट को देखकर अथवा श्रवणकर क्रिया हीनता को जड़ता कहते हैं। यथा—

("मम प्रिय सुत हा! हा राम! राम।)
यह कहकर रानी हो गई चेतहीन।
जल तजकर जैसे खिन्न हो मीन दीन॥"

(२०) मृत्यु

किसी व्याधि या घातप्रघात द्वारा शरीरत्याग को मृत्यु कहते हैं। यथा—

"भाभर के आगर से, हँसो आपु पै,
ढूँढि रह्यौ सागर थो, बेला अववसान की।
आखेटक एहि समाँ, हाथ लिए तीर कमाँ,
धीरे धीरे पाँव थमा, कमाँ सनधान की॥
साँय साँय तीर चर्यो, हँसो भूमि आन पर्यो,
उठाइ उठाइ गिरो खायो तरे धान की॥"

(२१) हर्ष

इष्ट वस्तु के प्राप्त होने पर या सुनने पर मन के प्रसन्न होने में हर्ष भाव होता है। यथा—

"अस तीरथ पति देख सुहावा। सुखसागर रघुवर सुख पावा॥"

(२२) धृति

विपत्ति के पड़ने पर भी मन की अविचलता बनी रहने को धृति कहते हैं। यथा—

"निर्धन के धन राम। निर्बल के बल राम।
दुर्जन के दुर्धाम। मेटेंगे सब श्याम॥"

(२३) मति

माया, भ्रम, एवं शास्त्र आदि के द्वारा उत्पन्न यथार्थ ज्ञान को मति कहते हैं। यथा—

"जीभि जोग अरु भोग, जीभि बहुरोग बढ़ावै।
जीभि स्वर्ग ले जाय, जीभि सब नरक दिखावै॥"

(२४) आवेग

अति डर या प्रेम के कारण हृदयोत्पन्न वेग को आवेग कहते हैं। यथा—

"बाँधे बन निधि, नीर निधि, जलधि, सिंधु, वारीस।
सत्य तोयनिधिकंपति, उदधि, पयोधि नदीस॥"

(२५) उत्कण्ठा

नायक से मिलने की अभिलाष को उत्कण्ठा कहते हैं। यथा—

"रुचिर वसन भूषण सबै, परिहित कर कुलनारि।
चलि निज प्रियतम से मिलन, ले उमंग उर भारि॥"

(२६) निंद्रा

शारीरिक व मानसिक थकावट के कारण सुषुप्ति अवस्था के प्राप्त होने को निंद्रा कहते हैं। यथा—

"पथिक सो गया विटप तट, आच्छादित कर अंग।
तन की सुधि भूलिरह्यौ, आइ डस्यौ भुजंग॥"

(२७) स्वप्न

सुषुप्तावस्था में भी मस्तिष्क के संचलन होने को स्वप्न कहते हैं, प्रायः स्वप्न में असत्य बातें भी सत्य जान पड़ती हैं। यथा—

"क्यौं करि झूठि मानिए, सखि सपने की बात।
जु हरि रह्यौ सोवत हिये, सो न पाइयत प्रात॥"

(२८) व्याधि

कायक्लेश, भय आदि से जुरादिक व्याधि के होने को व्याधि कहते हैं। यथा—

"यह बिनसत नग राखि के, जगत बड़ौ जस लेहु।
जुरी विषम जुर ज्याइये, आय सुदर्शन देहु॥"

(२६) उग्रता

दुर्जनादि के अपराध को देखकर हृदय में उत्साह पैदा होने को उग्रता कहते हैं। यथा—

"दल्यौ अहिंसा अस्त्र लै, दनुजदुःख करि युद्ध।
अजय-मोह-गज-केसरी, जयतु तथागत बुद्ध।"

(३०) अमर्ष

दूसरे की गर्वोक्ति को श्रवणकर बदले में गर्वोक्ति कथन को अमर्ष कहते हैं। यथा—

"पाहन ते पतिनी करि पावन, टूक कियो हर के धनु को रे।
छत्र विहीन करी छण में छिति, गर्व हर्यौ तिनके बल को रे॥
पर्वत पुंज पुरइन के पात समान तरे अजहूँ धर को रे।
होइ नरायन हूँ पै न ये गुण, कौन इहाँ नर बानर है रे॥"

(३१) विमर्ष

निद्रात्याग पर होने वाले सुखद मर्मभाव को विमर्ष कहते हैं। यथा—

"उठे लखन निसि विगत सुनि, अरुणशिखा धुनि कान।
गुरुतें पहले जगतपति, जागे राम सुजान।"

(३२) वितर्क

पदार्थों पर विवेचन करने या वाद विवाद करने को वितर्क कहते हैं। यथा—

"माँस गरँथि कुच कंचन कलश कहें,
कहें मुखचन्द्र जो श्लेष्मा को घर है।
हाड़ को दशन पाँहि हीरा मोती कहें ताँहि,
माँस के अधर ओठ कहें बिवांफल है॥
हाड़ दण्ड भुजाकहें कोल नाल काम जुधा,
हाड़ के थंभा जंभा कहे रंभातरु है।

योंहि झूठी जगती बनावैं और कहावे कवि,
येते पर कहैं हमें शारदा को वर है ॥"

(३३) स्मृति

बीती बातों के स्मरण को स्मृति कहते हैं। यथा—

"आगे चना गुरु मातु दिये ते लिए तुम चाबि हमें नहीं दीने ।
पाछिली बानि अजौं न तजी वैसे ही भाभी के तंदुल कीने ॥"

[२] स्थायी-भाव

"आस्वादांन्कुर कन्दोऽसौ भावः स्थायीति संमतः ।"

—साहित्य-दर्पण

अर्थात् जो आस्वाद या रसरूपी अङ्कुर का कन्द है, वही स्थायी भाव है। वस्तुतः ये कोई पृथग्भाव नहीं है, संचारी भावों की परमोत्कर्ष पर्याय हैं; जो मस्तिष्क में अत्यधिक काल यापन कर उसे व हृदय को एक विशेष स्फूर्ति व चमत्कार (आनंद) से परिप्लावित कर देती है।

ये ६ प्रकार के होते हैं—(१) रति (२) हास (३) शोक (४) (क्रोध) (५) उत्साह (६) भय (७) घृणा (८) विस्मय और (६) निर्वेद या शम।

(१) रति

'रति' का अर्थ है 'प्रणय'। स्त्री और पुरुष की परस्पर प्रीति को रति कहते हैं। गुरु, देव पुत्रादि में जो प्रीति होती है, उसे शास्त्रकार केवल 'भाव' कहते हैं। यथा —

"क्या तू यह इच्छा रखता है कि वह तोड़ लज्जा का जाल ।
तेरे कंठदेश में डाले आकर अपने बाहु मृणाल ॥"

(२) हास

हँसी के भाव को हास कहते हैं। यथा—

"कहाँ से हो आये तुम, कहाँ कोनो गौन है ।
आये प्रसूदर से औ, जाते यम भौन हैं ॥"

[प्रसूदर = माता का पेट]

(३) शोक

जब कुछ अनिष्ट हो जाने पर चित्त में रञ्ज की उत्पत्ति होती है, उसे शोक कहते हैं। यथा—

"किस विधि दुख झेलूँ आर्त्ति कैसे घटेगी।
यह अवधि बड़ी है हाय! कैसे कटेगी॥"

(४) क्रोध

अपमानादि होने पर उत्पन्न चित्त विकार को क्रोध कहते हैं। यथा—

"मातुपितहिं जनि सोचबस, करसि महीप किशोर।
गर्भन के अर्भक दलन, परशु मोर अति घोर॥"

(५) उत्साह

एक सुभट को देखकर दूसरे सुभट के दिल में होने वाले जोश को उत्साह कहते हैं। यथा—

"मेघनाद को लखि लखन, हरषे धनुष चढ़ाइ।
दुखित विभीषण दवि रह्यौ, कछु फूले रघुराइ।"

(६) भय

भयंकर पदार्थ, आकृति या चेष्टाओं को देखकर डर जाने को भय कहते हैं। यथा—

"सिव समाज जब देखन लागे।
बिडरि चले वाहन सब भागे॥
धर धीरज तहँ रहे सयाने।
बालक सब लै जीव पराने॥"

(७) घृणा या जुगुप्सा

किसी घृणास्पद पदार्थ के अवलोकन अथवा कथन के श्रवण से होने वाले भाव को घृणा कहते हैं। यथा—

"मल रुधिर राध मल थैली। कीकस वसादि तें मैली॥
नवद्वार बहें घिनकारी। अस देह करें किमि यारी॥"

(८) विस्मय

अघटित या घटित घटना को लखकर अथवा श्रवणकर, जहाँ आश्चर्य की भावना उत्पन्न हो, वहाँ विस्मयभाव होता है। यथा—

"(भजमन चरण कमल हरिराई)
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, अंधे को सब कुछ दरसाई॥
बहरो सुनि मूक पुनि बोले, रंक चलै सिर छत्र धराई॥"

(९) निर्वेद

जहाँ ज्ञान के द्वारा वीतरागता की भावना उत्पन्न होती है, उस विरतिभाव को निर्वेद कहते हैं। यथा—

"शुभ अशुभ करम फल जेते। भोगे जिय एक ही तेते॥
सुत दारा होय न सीरी। सब स्वारथ के हैं भीरी॥"

विशेष—सूरदास जी और तुलसीदास जी नामक दो आचार्यों ने इन नौ स्थायी भावों के अतिरिक्त एक 'स्नेह' नामक दसवाँ भाव और माना है। उसका भी हम यहाँ वर्णन करेंगे।

(१०) स्नेह

पुत्र, शिष्यादि पर जो स्वाभाविक प्रेम होता है, उसे 'स्नेह' कहते हैं। यथा—

"सुत मुख देखि जसोदा फूलि।
हरषत देखि दूध की दँतियाँ, प्रेम मगन तन की सुधि भूली॥"

सूचना—उपर्युक्त १० स्थायी भावों से क्रमशः शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त और वात्सल्य रस की उत्पत्ति कही गई हैं, जिनका आगे इसी प्रकरण में वर्णन किया गया है।

विभाव और अनुभाव

उपर्युक्त भावों की अपेक्षा रस निष्पत्ति के लिए विभाव और अनुभाव की भी अत्यपेक्षा होती है।

(१) विभाव

रसों को प्रदीप्त करने वाली सामग्री को 'विभाव' कहते हैं। 'विभाव' का

शाब्दिक अर्थ है 'कारण'। अर्थात् जो रसनिष्पत्ति में कारण हैं, उसे ही विभाव कहते हैं। इसके २ भेद हैं—(१) उद्दीपन और (२) आलंबन

(१) **उद्दीपन विभाव**—जो रस को उद्दीत करे, बढ़ावै उसे उद्दीपन कहते हैं। यथा—

> **"मरिबे को साहस कियौ, बढ़ी बिरह की पीर।**
> **दौरत है समुहै ससि, सरसिज सुरभि समीर॥"**

समा०—उपर्युक्त उदाहरण में शशि, कमल और मलियानिल नायिका की विरहाग्नि को उद्दीत कर रहे हैं। अतः यहाँ उद्दीपन विभाव होगा।

(२) **आलम्बन विभाव**—'आलंबन' का अर्थ है 'आश्रय'। और जिस पर रस आश्रय ग्रहण करते हैं उसे आलंबन कहते हैं। ये रस की निष्पत्ति में कारण भी होते हैं और रसविश्रामार्थ संश्रय भी। जैसे—करुण रस में मृतक, हास्य रस में हास्योत्पादक विदूषक, नर्म सचिव और शान्त रस में प्रभुगणकीर्तन और संसार की अनित्यता आदि।

(२) अनुभाव

जिन चेष्टाओं के प्रादुर्भाव से रस की अनुभूति होने लगती है, उसे अनुभाव कहते हैं। जैसे—

> **"मुँह बनाय, उठाय भुज मुकुलित कीने नैन।**
> **रोमांचित हो सब भजै, हत्या देख सके न॥"**

समा०—उपर्युक्त दोहे में 'मुँह बनाना, नेत्र वंद करना और रोमांचित होना' वीभत्स रस के अनुभाव वर्णित हैं। इसके तीन भेद हैं—(१) सात्विक (२) कायिक (३) मानसिक

(१) सात्विकानुभाव

शरीर के स्वभाविक अङ्ग-विकार को सात्विकानुभाव कहते हैं। इसके ८ भेद हैं—

(१) **स्तम्भ**—भय, लज्जा, तथा हर्ष आदि से अंगों के स्थकित होने को स्तम्भ कहते हैं। यथा—

> **"चिन्तन कर भूत-प्रेत का, थकित हुए तत्काल।"**

(२) **कम्प**—भय, हर्ष, कोपादि से अङ्गों के स्फुरण को कम्प कहते हैं। यथा—

"सुनकर सिंह-नाद वहाँ, काँपे सबके गात।"

(३) **स्वर भङ्ग**—मद, भय, कोप और आनंदादि से परिप्लावित हो गद्गद् वाणी कहने को स्वर भङ्ग कहते हैं। यथा—

"कण्ठ घुटे गदगद गिरा, बोले जात न बैन।"

(४) **वैवर्ण्य**—हर्ष, भय, मोह, और कोपादि से शरीर के रंग विकार को वैवर्ण्य कहते हैं। यथा—

"अरुन रंग आनन छवि छावै। अरि के अस्त्र गुविंद बचावै।"

(५) **अश्रु**—हर्ष, रोष, भय और शोकादि के कारण आँखें भरि आने को अश्रु कहते हैं। यथा—

"तड़फ तड़फ माली अश्रु धारा बहाता।
मलिन मलिनिया का दुःख देखा न जाता॥"

(६) **प्रस्वेद**—हर्ष, श्रम, लज्जा, भय और कोपादि के कारण पसीना बह निकलने को प्रस्वेद कहते हैं। यथा—

(१) **"कृशोदरी कहीं चली हैं, लिये हैं बोझा छुटी हैं वेणी।**
निकल के बहती है चन्द्रमुख से, पसीना बनकर छटा की श्रेणी॥"

(२) **गृहीत्वा चूर्णमुष्टिम् हर्षोत्सुकिताया वेपमानायाः।**
अवकिरामीति प्रियतमं हस्ते गंधोदक जातम्॥"

(७) **रोमाँच**—हर्ष, भय, एवं रोषादि से देह के पुलकित होने को रोमांच कहते हैं। यथा—

"पुलकित हैं मेरे गात्र, लखकर तेरा नेह।
चरण-शरण में राखियो, ईश दया के गेह॥"

(८) **प्रलय**—जब देश, काल, लज्जा और तन का कुछ भी मान न रहे, तब प्रलय अनुभाव होता है। यथा—

"लोक राम को बनगमन, परी भूमि पै आन।
परीरही अति देर तक, रह्यौ न तन को भान॥"

(२) कायिक अनुभाव

शरीर के अंग प्रत्यंगों द्वारा चेष्टाएँ करने में कायिक अनुभाव होता है। यथा—

"वैद नाम ले अंगुरनि खंडि अकास।
भेज्यो सूपनखाँहि, लखन के पास॥"

(वेद = श्रुति, कर्ण) (अकास = आकाश, नाक)

(३) मानसिक अनुभाव

मन के द्वारा होने वाले प्रमोदादि चेष्टाओं में मानसिक अनुभाव होता है। यथा—

"फली सकल मन-कामना, लूट्यो अगनित चैन।
आजु अँचै हरिरूप सखि, भये प्रफुल्लित नैन॥"

रस

रस नौ हैं—(१) शृंगार, (२) हास्य, (३) करुण, (४) रौद्र, (५) वीर, (६) भयानक (७) वीभत्स, (८) अद्‌भुत (९) शान्त और किसी किसी के मतानुसार (१०) वात्सल्य भी।

(१) शृंगार रस

सौंदर्य के अवलोकन करने पर जो लोकोत्तर आनंद प्राप्त होता है, उसे शृंगार रस कहते हैं। शृंगार रस में सभी संचारीभाव सन्निविष्ट होते हैं, किन्तु कोई-कोई महानुभाव उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर शेष २९ संचारीभावों के सन्निवेश होने का समर्थन करते हैं। इसके २ भेद हैं—(१) संयोग शृंगार और (२) विप्रलम्भ शृंगार।

(१) संयोग शृंगार

दर्शन, स्पर्श, संभाषण आदि से नायक नायिका जो इंद्रिय सुख को प्राप्त करते हैं, उसे संयोग शृंगार कहते हैं।

संचारीभाव—श्रम, चिंता, मोह, असूया, क्रीड़ा, मद, धृति' गर्व, आदि।

स्थायीभाव—रति।

आलम्बन—प्रेमास्पदादि ।

उद्दीपन—संगीत, बसन्त, मलयानिल, कोकिल, कुमुद, सखी, चन्द्रमा, चाँदनी, उपवन आदि ।

अनुभाव—नायक और नायिका ।

सहचररस—हास्य और अद्भुत ।

विरोधीरस—करुण, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स, शान्त और वात्सल्य ।

गुण—माधुर्य्य, प्रसाद ।

वृत्ति—उपनागरिका और कोमला ।

रीति—वैदर्भी और पाञ्चाली ।

उदाहरण—

"कंकन किंकिन नुपुर धुनि, सुनि बोले राम हृदय गुनि ।
मानहुँ मदन दुंदुभि दीन्ही, मनसा विश्व-विजय की कीन्ही ॥"

(२) विप्रलम्भ शृंगार

नायिक नायिका में उत्कट प्रणय हो जाने पर भी उनका समागम नहीं होने को विप्रलम्भ शृंगार कहते हैं

संचारीभाव—उग्रता, मरण, आलस्य, श्रम, चिंता, विषाद, स्वप्न, व्याधि, उन्माद, चपलता, मोह. दैन्य, अमर्ष, शंका और अपस्मार आदि ।

स्थायीभाव—रति ।

आलम्बन—प्रेमास्पदादि ।

उद्दीपन—चन्द्रमा, चाँदनी, मयूर, कोकिल, चकवाचकवी, मेघ, उपवन, कमल, कर्पूर, उबटन, मलयानिल, संगीत और सावन-भादों की झड़ी आदि ।

अनुभाव—नायक और नायिका ।

गुण—माधुर्य और प्रसाद ।

वृत्ति—उपनागरिका और कोमला ।

रीति—वैदर्भी, पाञ्चाली ।

उदाहरण—(१) "बैठी है सखिन संग पिय को गमन सुन्यौ,
सुख के समूह में वियोग आग भरकी।
"गंग" कहै त्रिविध सुगंध लै बह्यो समीर,
लागत ही ताके तन भई व्यथा ज्वर की॥
प्यारी को परसि पौन गयौ मानसर पै सु,
लागत हीं औरै गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवार जरि छार भाई,
जल जरि गयो पङ्क सूक्यौ भूमि दर की॥"

(२) "अहो अहोभिर्महिमा हिमागमेऽप्यभिप्रपेदे प्रतितां स्मरार्दिताम्।
तपर्तुपूर्तावपि मेदसांभरा विभावरीभिर्विभरांबभूविरे॥—श्री हर्ष

इसके ३ प्रकार कहे गये हैं—(१) पुर्वानुराग, (२) मान और (३) प्रवास

(१) **पूर्वानुराग**—संयोग होने के पूर्व जो अनुराग होता है उसे पूर्वानुराग कहते हैं। यथा—

"मैं लै दयौ लयौ सुकर, छुवत छनक गो नीर।
लाल तिहारो अरगजा, उर ह्वै लग्यौ अबीर॥"

(२) **मान**—संयोग के पश्चात् रूठने से जो वियोग होता है उसे मान कहते हैं। यथा—

"मनमोहन साजन मेरे; कहाँ गये हो रूठि।
जीनो तुम बिनु व्यर्थ है; आओ प्रिय मम सूठि॥"

(३) **प्रवास**—संयोग के पश्चात् देशान्तर से जो वियोग होता है उसे प्रवास-विप्रलंभ कहते हैं। यथा—

(१) "प्रीतमगोनु किंधौ जियगौनु कि भौनु कि भारु भयानक भारो।
पावस पावक फूल कि शूल पुरन्दरचाप कि 'सुंदर' आरो॥
सीरी बयारि किंधौ तरवारि है वारिदवारि कि बान विषारो।
चातक बोल कि चोट चुभैचित, इन्द्रबधू कि चकोर को चारो॥

[इन्द्रबधू=बीर बधूटी] [चकोर को चारो=आग]

(२) अद्यैव यत्प्रतिपदुद्गत चन्द्ररेखा, +
सख्यं त्वया तनुरि गमिता वराक्याः ।
कान्ते गते कुसुम-सायक ! तत्प्रभाते
बाणावलीं कथय कुत्र विमोचयसित्वम् ॥—रुद्रभट्ट

(३) जिह ब्राह्मन प्रिय गमन को, सगुन दियौ ठहराइ ।
सजनी ताहि बुलाइ दै, प्रानदान लै जाइ ॥—रसनिधि

इसके अंतर्गत विरह की १० दशाएँ मानी गईं है—

(१) अभिलाषा

आँखे चार हो जाने पर भी जो शरीर द्वारा संयोग की इच्छा रहती है, तब उसे अभिलाषा दशा कहते हैं । यथा—

(१) "नैन मिलै मनहू मिल्यौ, अब संयोग री चाह ।
झटिति पधारिये प्रिय मम, मेटन चित की दाह ॥"

(२) पंचत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांशं विशन्तु ध्रुवं ।
धातारं प्रणिपत्य नम्रशिरसा याचेहमेकं वरं ॥
तद्वापीषुपयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयांगन ।
व्योम्नि व्योम तदीयवर्त्मनिधरा तत्तालवृन्तेऽनिलः ॥

(२) चिन्ता

लाखों प्रयत्न करने पर भी जब संयोग न हो तो, उसे चिंतावस्था कहते हैं । यथा—

कुञ्जन में मैं गई मिलन, तापस कीन्हो योग ।
धुनि रमाइ प्रिय मिलन अर्थ, तउ न भयो संयोग ॥

(३) स्मरण

संयोग की बात बार-बार सोचते हुए उच्छ्वासादि लेने को स्मरण दशा कहते हैं । यथा—

उझकि उझकि चित, दिन दिन हेरत द्वार ।
जबते बिछुरे सजनी, नंदकुमार ॥

(४) उद्वेग

उदास और व्याकुल होने को उद्वेगावस्था कहते हैं। यथा—

"जबतें बिछुरे मितवा, कहु कस चैन।
रहत भर्यो हिय साँसन, आँसुन नैन॥"

(५) गुणकथन

प्रिय के गुणों के चिंतवन करने को गुणकथनावस्था कहते हैं। यथा—

"पीताम्बर परिहित किसन, हाथ चक्र उरमाल।
मो मन को कीनो हरण, मधुसूदन, गौपाल॥"

(६) प्रलाप

बिना सोचे विचारे बक उठने को प्रलाप कहते हैं। यथा—

फिरि फिरि बूझति कहि, कहा कह्यौ साँवरे गात।
कहा करत ? देखे कहाँ ? अली चली क्यौं बात॥

(७) व्याधि

मन में दुःख के बढ़ जाने से शरीर के क्षीण होने को व्याधि कहते हैं। यथा—

(१) करके मींड़े कुसुम लौं, गई बिरह कुम्हिलाइ।
सदा समीपिनी सखिनि हूँ, नीठी पिछाँनी जाइ॥

(२) उद्धूयेत नतभ्रूः पक्ष्मनिपातोद्भवैः पवनैः।
इति निर्निमेषमस्या विरहवयस्या विलोकते वदनं॥

(३) पजर्यो आग वियोग की, बह्यो विलोचन नीर।
आठौं जाम रहे हियौ, उड्यो उसास समीर॥

(४) प्राप्ता तथा तानवमंगयष्टि स्त्वद्विप्रयोगेण कुरंगदृष्टेः।
धत्ते गृहस्तम्भ निवर्त्तितेन कंपं यथा श्वास समीरणेन॥

—महाकवि बिल्हण

(८) जड़ता

सारे शरीर में काठ मार जाने को वा बेहोश हो जाने को जड़ता कहते हैं। यथा—

"हिलै दुहूँ न चलै, दुहूँ, ढूँढन बिसरिगे गेह ।
इकटक दुहुँनि दुहूँ लखै, अटकि अटपटे नेह ॥"

(९) उन्माद

पागलपन को उन्माद कहते हैं । यथा—

'ह्याँ ते व्हाँ, व्हाँ ते इहाँ, नैको धरे न धीर ।
निशदिन डाढ़ी सी फिरै, बाढ़ी गाढ़ी पीर ॥"

(१०) मरण

वियोग जनित दुःख के कारण शरीर त्याग को मरण कहते हैं । यथा—

(१) "तीर लग्यौ न, गड़ी बरछी नहीं, घायल घातक ने न कर्‌यौ है ।
एकहू ठौर चुटैल नहीं, नहिं गाज परी न कहूँ पजर्‌यौ है ॥
व्याधि न जानि परै कछु 'शंकर' तो फिर क्यौं बिन प्रान पर्‌यौ है ।
बौरे रसाल बतावत हैं, बस 'मार' को मार्‌यौ बटोही मर्‌यौ है ॥"

—पं० नाथूराम 'शंकर'

[चुटैल = घायल] [गाज = बिजली] [मार = कामदेव]

(२) "कुसुम-कार्मुक कार्मुक संहित द्रुतशिलीमुख खंडित विग्रहाः ।
मरणमप्यपराः प्रतिपेदिरे किमु मुहुर्मुदुर्गत भर्तृकाः ॥"

—महाकवि माघ

(३) "देखा पंथी तरुण का शव, रसाल के पास ।
कारण जाना अन्त का हाय ! बसंत-विकास ॥"

—पं० नाथूराम 'शंकर'

(४) "सव्याधे कृशता, क्षतस्य रुधिरं, दष्टस्य लालाश्रुतिः ।
किंचिन्नैतदिहास्ति तत्कथमसौ पांथस्तपस्वी मृतः ॥
आः ज्ञातं मधुलम्पटैर्मधुकरैरारब्ध कोलाहले ।
नूनं साहसिना रसालमुकुले दृष्टिः समारोपिता ॥"

—काव्यबंधु 'रोमल-सोमल'

(२) हास्यरस

जिस रस के आस्वादन से हँसी के भाव उत्पन्न हो, उसे हास्य-रस कहते हैं।

संचारी भाव—चपलता, निंद्रा, हर्ष, उत्सुकता, आलस्य, अवहित्थ और अश्रु आदि।

स्थायी भाव—हास।

आलम्बन—भण्डबचन, भण्डाकृति और आकृति गोपन आदि।

उद्दीपन—विदूषक, नर्म सचिव, बहुमूर्ति, दुर्वेष आदि।

अनुभाव—मुखप्रसार, दृगमिचाव, अंगविस्फुरण आदि।

गुण—प्रसाद

रीति—पांचाली।

वृत्ति—कोमला।

सहचर रस—संयोग शृंगार, अद्‌भुत, वीर, शांत, वीभत्स, रौद्र और वात्सल्य।

विरोधी रस—भयानक और करुण।

उदाहरण—

(१) रघुपति रीति सदा चली आई।
पान खाय बीड़ी सिलगाई॥

(२) राम रमापति करधन लेहू।
खेंचत रास बेल चलेदहू॥

(३) चिरजीवौ जोरी जूरै क्यों न सनेह गँभीर।
कौघटि, ये वृषभानुजा, वै हलधर के वीर॥

(४) देखि सिवहिं सुरतिय मुसुकाईं।
बर लायक दुलहिन जग नाहीं॥

(६) कमले कमला शेते हरः शेते हिमालये।
क्षीराब्धौ च हरिः शेते मन्ये मत्कुणशंकया॥

(६) कोउ फिरें कनफटा, कोउ शीष धरें जटा,
कोउ लिए भस्मबटा भूले भटकत हैं।
कोउ तज जाहिं अटा, कोउ घेरे चेरि चटा,
कोउ पढ़ै पटा कोऊ धूम गटकत हैं॥
कोऊ तन लिए लटा, कहा महा दीसै कटा,
कोउ तरतटा कोउ रसा लटकत हैं।
भ्रम भाव तैं न हटा, हिये काम नहीं घटा,
विषैसुख रटा साथ हाथ पटकत हैं॥

(७) **विदूषक**—अहा वैद्यराज ! नमस्कार ! बस एक रेचक और थोड़ा सा वस्ति-कर्म—इसके बाद गर्मी ठण्डी ! अभी आप हमारे नमस्कार का भी उत्तर देने के लिए मुख का व्यादान न कीजिये। पहले रेचक प्रदान कीजिये! निदान में समय नष्ट न कीजिये।

क्या आप निदान कर रहे हैं ? अजी अजीर्ण है अजीर्ण। भगवान के लिये लघु पाचन ही सही।

(८) या अनुरागी पेट की गति समुझै नहिं कोइ।
जैतो भोजन डारिये, तेतौ ऊँचौ होइ॥
तेतो ऊँचो होइ फूलकर होवे तम्बू।
हाथ फेरकर मुख से बोलो हर हर शम्भू॥
कहँ काका ऐसी डकार आवेगी फौरन।
लारी ओवरलोड, दे रही जैसे हौरन॥"

(३) करुण रस

जिस रस के आस्वादन से हृदय में शोक का आविर्भाव हो, उसे करुण रस कहते हैं।

संचारी भाव—मोह, विषाद, अश्रु, अपस्मार, जड़ता, उन्माद, व्याधि, श्रम और निर्वेदादि।

स्थायी भाव—शोक ।

आलंबन—मृतक व्यक्ति, दरिद्र व्यक्ति, दुःखी पुरुष, तथा शोचनीय दशा को प्राप्त व्यक्ति ।

उद्दीपन—रुदन (विलाप), करुणोक्ति, चीत्कार, मृतकदाह, तथा मृत व्यक्ति के गुणश्रवण व चित्रावलोकन आदि ।

अनुभाव—मूर्छा, विलापकरना, दीर्घ श्वास लेना, छाती कूटना, सिर फोड़ना, हाथ पैर फटकना और अपमृत्यू को प्राप्त होना आदि ।

गुण—माधुर्य्य ।

रीति—वैदर्भी ।

वृत्ति—उपनागरिका ।

सहचर रस—रौद्र, भयानक, शांत, अद्भुत, वीर, बीभत्स और वात्सल्य ।

विरोधी रस—हास्य और शृंगार रस ।

उदाहरण—

(१) राम राम कहि, राम कहि, राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुवर विरह, राउ गएउ सुर धाम ॥

(२) देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करके करुणानिधि रोए ।
पानी परात को हाथ छुयो नहीं नैनन के जल से पग धोए ॥

(३) वह मृदु मुसकाता जो न माता कहेगा ।
फिर सुख मुझको क्या प्राण रखके रहेगा ॥
फिर मधुर मलाई मैं किसे हाय दूँगी ।
वर विविध मिठाई मैं किसे हाय दूँगी ॥

(४) "हा मातस्त्वरितासि कुत्र किमिदं हा देवताः क्वाशिषः
धिक् प्राणान् पतितोऽशनिर्हुतवहस्तेऽङ्गेषु दग्धे दृशौ
इत्थं घर्घरमध्यरुद्धकरुणाः पौराङ्गनानां गिरः
चित्रस्थानपि रोदयन्ति शतधा कुर्वन्ति भित्तीरपि ॥"

(५) "भाग की भूमि, सुहाग को भूषन राजसिरी निधि लाज निवासू ।
आइए मेरी दुहू कुल दीपक धन्य पतिव्रत प्रेम प्रकासू ॥

लंक ते आइ निसंक लिये सुख सर्वसु वारति कौसिला सासू ।
पायन पै ते उठाई सियै हिय लाय बुलाय लै पोंछति आंसू ॥"

(६) "हा नृप हा बुध हा कविबन्धो विप्रसहस्र समाश्रय देव ।
मुग्धविदग्धसभान्तर रत्न ! क्वासि गतः क वयं च तवैते ॥"

(७) "विकृन्ततीव मर्माणि देहं शोषयतीव मे ।
दहतीवान्तरात्मानं क्रूरः शोकाग्निरुत्थित ॥
देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः ।
तं देशं नैव पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥"

(४) रौद्र रस

जिस रस के आस्वादन से क्रोध प्रकट हो, उसे रौद्र रस कहते हैं ।

संचारी भाव—मद, गर्व, वितर्क, विमर्ष, अमर्ष, स्मृति, उग्रता, श्रम और चपलता आदि ।

स्थायी भाव—क्रोध ।

आलंबन—शत्रु, अवस्कंदक, अपराधी और दुर्जन आदि ।

उद्दीपन—आक्रमण, संधि-विच्छेद, अवस्कंदन, अपराध, कटूक्ति, शत्रु-सैन्यवृद्धि आदि ।

अनुभाव—मुँह और आँखों का लाल होना, भृकुटि चढ़ाना, दाँत पीसना, ओंठ चबाना, क्रोध से पूर्ण हो जाना आदि ।

गुण—ओज ।

रीति—गौड़ी ।

वृत्ति—परुषा ।

सहचर रस—वीर, वीभत्स, वात्सल्य, शांत, अद्भुत और करुण ।

विरोधी रस—शृंगार, हास्य और भयानक ।

उदाहरण—

(१) रे नृप बालक काल बस, बोलत तोहि न सँभार ।
धनुही सम त्रिपुरारि धनु, विदित सकल संसार ॥

(२) सौंपकर मृतदेह सेनापति निकट।
प्रण किया सबसे उन्होंने यह विकट॥
भस्म जब मैं कर चुकूँगा रिपुनगर।
तब पड़ेगी अग्नि इस प्रिय देह पर॥

(३) इन्द्रासन के ईच्छुक किसने करके तप अतिशय भारी।
की उत्पन्न असूया तुझ में मुझसे कहो कथा सारी॥
मेरा यह अनिवार्य शरासन पाँच कुसुमसायक धारी।
अभी बना लेवे तत्क्षण ही उसको निज आज्ञाकारी॥

(४) यह कुसुम अभी तो डालियों में धरा था।
अगणित अभिलाषा और आशा भरा था॥
दलित कर इसे तू काल! क्या पा गया रे।
कण भर तुझमें क्या, हा! नहीं है दया रे॥

(५) मातु पितहि जनि सोचबस, करसि महीप किसोर।
गरभन के अरभक दलन, परशु मोर अतिघोर॥

(६) कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरुपातकं
मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरुदायुधैः
नरकरिपुणा सार्द्धं तेषां सभीमकिरीटिना—
मयमहमसृङ् मदोमांसैः करोमि दिशां बलिम्॥

—भारवि

(५) वीर रस

जिन भावों से वैक्रान्त या वीरता प्रकट होउ से वीर रस कहते हैं। यथा—

संचारी भाव—गर्व, असूया, धृति, उत्सुकता, आवेश, श्रम, हर्ष मरण आदि।

स्थायीभाव—उत्साह

आलम्बन—शत्रु, दीन, दुःखिया, सत्सङ्ग, धर्मनिष्ठा आदि।

उद्दीपन—मारु बाज़ों का बजना, क्रन्दन, शंखनाद आदि।

अनुभाव—मारकाट, अंग विस्फुरण, भृकुटि चढ़ाना, रोषकरना, सैन्य संचलन और अस्त्र शस्त्रादि का प्रयोग।

गुण—ओज, प्रसाद।

वृत्ति—परुषा और कोमला।

रीति—गौड़ी, पांचाली और लाटी।

सहचर रस—हास्य, अद्भुत, करुण, वीभत्स और रौद्र।

विरोधी रस—शृंगार, शान्त और वात्सल्य।

उदाहरण—

(१) युद्धवीर—"सिंहनाद गलगर्जि के, भंज उठ्यौ भट भीर।
छता वीर रस उमँग में, गनै न गोली तीर ॥"

(२) सत्यवीर—"मृत रोहित पट्ट दान लै, धार्यो धर्म अमंद।
खंग धार व्रत धीर धनि, सत्यवीर हरिचंद ॥"

(३) दानवीर—"दया धर्म जान्यौ तुही, सब धर्मन को सार।
नृप शिवि तेरे दान पै, बलि हूँ, बलि सौ बार ॥"

(४) मिल दुष्ट दुर्योधन अनुज तब भीम से लड़ने लगे।
पर शीघ्र मर मर कर सभी वे भूमि पर पड़ने लगे ॥
होने लगे रिपु नष्ट यों उनके प्रबल भुजदण्ड से।
होते तृष्णादिक खंड ज्यों वातूल जाल प्रचण्ड से ॥

(५) राणा को सो वाणा लीने आपा सीधे थान चीने,
दाना अंगी, नाना रंगी खाना जंगी जोधा हैं।
माया वेली जेती तेती रेतैं में धारेती सेती,
फंदी ही को कंदी खोदे, खेती को सो जोधा हैं ॥
वाधा सेती हाँता जोरे, राधा सेती ताँता जोरे,
वाँदी सेते नाँता जोरे चाँदी को सो सोधा हैं।
जाने जाहि ताहि नीके, माने राही पाही पीके
ठानै बात डाहि ऐसो धारी-वाही वोधा हैं ॥

(६) "तनुत्राणं तनुत्राणं शस्त्रं शस्त्रं रथो रथः ।
इति शुश्रुविरे विष्वगुद्‌मयः सुभटोक्तयः ॥
वेतंडगण्डकण्डूति पाण्डित्य परिपन्थिना ।
हरिणा हरिणालीषु कथ्यतां कः पराक्रमः ॥"

(६) भयानक

जिस रस के आस्वादन में इंद्रियक्षोभ या भय उत्पन्न हो।

संचारी भाव—जुगुप्सा, रोमांच, अवहित्थ, विषाद, जड़ता, मति, स्मृति निर्वेदादि ।

स्थायी भाव—भय ।

आलम्बन—शत्रु, क्रव्याद, पारिपांथिक, अवस्कंदक, भूत, प्रेत, पिशाच, महोरग, श्मशान, विभीषिका आदि ।

उद्दीपन—अंधकार, अवस्कंदन, तथा भूत प्रेतादि की चेष्टाएँ ।

अनुभाव—रोमाँच, प्रकम्प, वैवर्ण्य, डक्की बँधना, आँख मूँद लेना, स्वेद या आँसुओं का बह निकलना आदि ।

गुण—ओज ।

रीति—गौड़ी ।

वृत्ति—परुषा ।

सहचर रस—अद्‌भुत, करुण और वीभत्स ।

विरोधी रस—शृंगार, हास्य, वीर, रौद्र, शान्त और वात्सल्य ।

उदाहरण—

(१) **रणसुभट्ट वे भुट्ट लौं, गहि, असि कट्टत मुँड ।
उठि कबंध जुट्टत कहूँ, कहुँ लुट्टत रिपुरुण्ड ॥**

(२) **हाट, बाट, कोट, ओट अटनि अगार, पौरि,
खोरी खोरी दौरी दौरी दीन्ही अति आगी है ।
आरत पुकारत सँभारत न कोहू काहूँ
व्याकुल जहाँ सो तहाँ लोक चलो भागि है ॥**

बालधी फिरावै बार बार झहरावैं झरैं
बूँदियाँ सी लंक पिघलाई पागि पागि है।
"तुलसी विवेक अकुलानी जातुधानी कहें
चित्रहू के कपि सों निसाचर न लागि है॥"

(३) तेहि अवसर सुनि सिव धनु भंगा। आये भृगुकुल कमल पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर शरीर भूति भलि भ्राजा। भाल विशाल त्रिपुण्ड बिराजा॥
सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिसिबस कछुक अरुण होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिसराते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥
वृषभकंध और बाहू विशाला। चारु जनेउ, माल मृगछाला॥

(४) तन छार ब्याल कपाल भूषन, नगन जटिल भयंकरा।
संग भूत प्रेत पिशाच जोगिनि, विकट मुख रजनीचरा॥

(५) सिवहिं संभुगन करहिं सिंगारा। जटामुकुट अहि मौर सँवारा॥
कुण्डल कंकन पहिरे ब्याला। तन विभूति पट केहरि छाला॥

(६) अयि कुरंगि! तपोवन-विभ्रमादुपगतासि किरातपुरीमिमाम्।
इह न पश्यति 'दारय, मारय, ग्रस-पिबेति' शुकानपि जल्पतः॥

(७) इदं मघोनः कुलिशं धारासन्निहितानलम्।
स्मरणं यस्य दैत्यस्त्रीगर्भपाताय केवलम्॥

(७) वीभत्स रस

जिस रस के आस्वादन से घृणा के भाव प्रकट हों, उसे वीभत्स रस कहते हैं।

संचारी भाव—अपस्मार, जड़ता, आवेग, व्याधि, मरण, मति, मोह, ग्लानि, और निर्वेदादि।

स्थायी भाव—जगुप्सा।

आलंबन—घृणास्पद पदार्थ, और घिनौने दृश्य।

उद्दीपन—शव, पुरीष, माँस, रक्तादि का सड़ना, उनमें कीड़े आदि का पड़ना, मक्खी, मच्छड़ आदि का भिनभिनाना और दुर्गंध आदि।

अनुभाव—थूकना, मुँह मोड़ना, नाक मूँदना, आँखें बंद कर लेना, रोमाँचित होना, आदि।

गुण—ओज और प्रसाद।

रीति—गौड़ी और लाटी।

वृत्ति—परुषा और कोमला।

सहचर रस—हास्य, अद्भुत, करुण, वीर, भयानक और शान्त।

विरोधी रस—शृंगार और वात्सल्य।

उदाहरण—

(१) मात पिता-रज-वीरज सौं, उपजी सब धात कुधात भरी है।
माखिन के पर माफिक बाहर, चाम के बेठन मेढ़ धरी है॥
नाहिं तौ आय लगैं अबही, बक बायस जीव बचैन घरी है।
देह दशा यह दीखत आत, घिनात नहीं किन बुद्धि हरी है॥

(२) ठौर ठौर रकति के कुण्ड केसनि के झुण्ड
हाड़नि सोंभरी जैसे थरी है चुरैल की।
थोरो सो धक्कों लगे ऐसे फट जाय मानों
कागद की पुड़ी कींधों चादर है चैल की॥

(३) विभाति बहिरेवास्याः, पद्मगंधनिभंवपुः।
अन्तर्मज्जास्थिविण् मूत्र-मेदः कृमिकुलाकुलं॥
अस्थीनि पित्तमुच्चारः क्लिन्नान्यन्त्राणि शोणितं।
पूति चर्मपिनद्धं सत् कामिनीत्यभिधीयते॥

(४) रिपु-अंत्रिन की कुण्डली, कर जुग्गिनि जु चबाति।
पीबहि में पागी मनो, जुवति जलेबी खाति॥

(५) आँती के तार के मंगल कंगन, हाँथ में बाँधि पिशाच की बाला।
कान में हाड़न के झुमका पहिरे, हीय में हियरान की माला॥
लोहू के कीचड़ सों उबटै सब अङ्ग बनाये सरूप कराला।
प्रीतम के संग हाड़ के गूदे की, मद्य पीये खुपरीन के प्याला॥

(६) मेदोग्रन्थी स्तनौनाम, तौ स्वर्णकलशौ कथं ।
विष्ठाद्दतौ नितम्बेच, कोऽयं हेम शिला भ्रमः ॥
मूत्रा सृग्द्वारमशुचि, छिद्रं क्लेदि जुगुप्सितं ।
तदेव हि रतिस्थान-महो पुंसा विडम्बनाः ॥

(७) "उत्कृत्योत्कृत्य कृत्ति प्रथममथ पृथूच्छोपभूयांसि मांसा-
न्यंसस्फिक्पृष्ट पिण्डाद्यवयव सुलभा; न्युग्रपूतीनि जग्ध्वा
आत्तस्नायवन्त्रनेत्रः प्रकटितदशनः; प्रेतरंकः करङ्कात्
अङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थफुटगतमपि; क्रव्यमव्यग्रमत्ति ॥"

(८) अद्भुत रस

जिस रस के आस्वादन से आश्चर्य प्रकट हों, उसे अद्भुत रस कहते हैं ।

संचारी भाव—हर्ष, शंका, वितर्क, मोह, आवेग आदि ।

स्थायी भाव—विस्मय ।

आलंबन—अलौकिक वा आश्चर्योत्पादक वस्तु या कार्य ।

उद्दीपन—अद्भुत वस्तु वा अद्भुत व्यक्ति का वर्णन वैचित्र्य अथवा उसके गुण कीर्तन ।

अनुभाव—रोमांच, स्तम्भ, स्वर भङ्ग, प्रस्वेद, विस्फारित नैत्र, आश्चर्यान्वित होना, संभ्रम, साधुवाद आदि ।

गुण—प्रसाद ।

रीति—पांचाली ।

वृत्ति—कोमला ।

सहचर रस—शृंगारादि समस्त रस ।

उदाहरण—

(१) बिनुपद चलै सुने बिनु काना,
कर बिनु काम करे विधि नाना ।
आनन रहित सकल रस-भोगी,
बिनु वाणी वक्ता बड़योगी ॥

(२) बनसागर सबनदी तलावा।
हिमगिरि सब कहुँ नेवति पठावा॥

(३) "स्थाणुः स्वयं मूलविहीन एव, पुत्रो विशाखो रमणी त्वपर्णा।
परोपनी तैः कुसुमैर जस्त्रं, फलत्यभीष्टं किमिदं विचित्रम्॥"

(६) *शान्त रस*

जहाँ सब जीवों में समान भाव वर्णित हो अर्थात् न किसी के प्रति ग भाव हो न किसी के प्रति द्वेष भाव; वहाँ '**शान्त रस**' होता है।

संचारी भाव—हर्ष, विषाद, मृति, धृति, स्मृति और निर्वेद आदि।

स्थायी भाव—निर्वेद या शम।

आलम्बन—नरक के महान् दुःख का चिन्तन, संसार की अनित्यता का भान, प्रभुगुण कीर्तन, और ईश्वर आदि।

उद्दीपन—बुढ़ापा, मरण, व्याधि, पुण्यक्षेत्र, सत्संग और हितोपदेश आदि।

अनुभाव—रोमाँच, विलाप, योगसाधन, ईश्वर भक्ति में रत होना और संसार से विरक्त होना आदि।

गुण—माधुर्य।

रीति—वैदर्भी।

वृत्ति—उपनागरिका।

सहचर रस—करुण, अद्भुत, बीभत्स और वात्सल्य।

विरोधी रस—शृंगार, हास्य, रौद्र, वीर और भयानक।

उदाहरण—

(१) मोक्ष महल की परथम सीढ़ी या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहैं; सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा॥
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवे।
यह नर भव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवे॥

(२) हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउँ न ठाऊँ के ठाऊँ बिलै है।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तिय कहीं संग रै है॥

'केशव' काम को राम बिसारत और निकाम न कामहि ऐहै।
चेति रे चेति अजौ चित अंतर अंतकलोक अकेलोइ जै है॥

(३) सुर असुर खगाधिप जेते। मृग ज्यों हरि काल दलेते॥
मणि, मंत्र, तंत्र बहु होई। मरते न बचावै कोई॥

(४) जीवन गृह गोधन नारी। हय गय जन आज्ञाकारी॥
इंद्रिय-भोग छिन थाई। सुरधनु ज्यों चपला चपलाई॥

(५) दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥

(६) असौ तरलताराक्षी पीनोत्तुङ्गघनस्तनी।
विवादमानैः कान्तारे, विहगैरद्य भुज्यते॥

(७) काहू घर पुत्र जायो, काहू के वियोग आयो,
काहू राग रंग, काहू रोआ रोई करी है।
जहाँ भानु ऊगत उछाह गीत गान देखे,
साँझ समै ताँहि थान हाय हाय परी है॥
ऐसी जगरीति को न देख भयभीत होत,
हा हा! नर मूढ़ तेरी मति कोने हरी है।
मानुष जनम पाय, सोवत बिहाय जाय,
खोवत करोरन की एक एक घरी है॥

(८) जासूँ तू कहत यह संपदा हमारी सो तो,
साधु ने ये डारि जैसे नाक सिनकी।
जासूँ तू कहत हम पुण्य-योग पाई सो तो,
नरकी की साई है, बड़ाई डेढ़ दिन की॥
घेरा माँहि पर्यो तू विचारे सुख चक्षुन को,
माँखिन के छूटत मिठाई जैसे भिनकी।
ऐते पर होइ न उदासी जगवासी जीव,
जग में असाता है, न साता एक छन की॥

(९) जगत चलाचल देखिये, कोउ साँझ कोउ भोर ।
लाद लाद कृत कर्म को, न जाने किन्ह और ॥
(१०) चक्रवर्ती की संपदा और इन्द्र लोक के भोग ।
काक-बीट समगिनत है, वीतराग के लोग ॥
(११) "उत्तानोच्छून मण्डूक पाटितोदर सन्निभे ।
क्लेदिनि स्त्रीव्रणे सक्तिरकृमेः कस्य जायते ॥"

विशेष :—नाट्यशास्त्रियों ने शान्त रस को नाटक के अनुपयुक्त माना है, अतः नाटक में ८ ही रस होते हैं ।

(१०) वात्सल्य रस

जहाँ, शिष्य पुत्रादि पर स्नेह भाव दर्शाया जाता है, वहाँ वात्सल्य रस होता है ।

संचारी भाव—हर्ष, मद, मोह, उत्सुकता, चंचलता, श्रम, गर्व आदि ।

स्थायी भाव—स्नेह ।

आलंबन—पुत्र, पुत्री व छात्र छात्रादि ।

उद्दीपन—आलम्बन की चेष्टाएँ ।

अनुभाव—ताली, चुटकी आदि बजाना, स्नेह पूर्वक देखना, हँसना, रोमाँचित होना, मुख चूमना और आलिंगन करना आदि ।

गुण—माधुर्य ।

वृत्ति—उपनागरिका ।

रीति—वैदर्भी

सहचर रस—करुण, हास्य, अद्भुत और शान्त ।

विरोधी रस—शृंगार, वीभत्स, वीर, भयानक और रौद्र ।

उदाहरण—

(१) सुत मुख देखि जसोदा फूली ।
हरषित देखि दूध की दँतियाँ प्रेम मगन तन की सुधि भूली ॥
बाहिर तें तब नंद बुलाए देखो धौं सुन्दर सुखदाई ।
तनक तनक सी दूध की दँतियाँ देखौ नैन सुफल करो आई ॥

आनन्द सहित महर तब आये मुख चितवत दोउ नैन अघाई ।
'सूर' स्याम किलकत द्विज देख्यो मनो कमल पर बीजु जमाई ॥

(२) बार बार जसुमति सुत बोधति आउ चंद तोहिं लाल बुलावै ।
मधु मेवा पकवान मिठाई आपु न खैहै तोहिं खवावै ॥
हाथहिं पर तोहिं लीने खेलै नहीं धरणी बैठावै ।
जल भाजन कर लै उठावति या में तनु धरि आवै ॥
जल-पुट आनि धरनि पर राख्यो गहि आन्यो चंदा दिखरावै ।
"सुरदास" प्रभु हँसि मुसुकाने बार बार दोऊ कर नावै ॥

(३) मैया मोहि बड़ो करि दैरी ।
दूध, दही घृत, माखन मेवा जो माँगो सो दैरी ॥
कछू हवस राखे जिन मेरी, जोय जोय मोहि रुचैरी ।
रंगभूमि में कंस पछारौं, कहौं कहाँ लौं मैं री ॥
'सूरदास' स्वामी की लीला मथुरा राखौं जौ री ।
सुन्दर स्याम हँसत जननी सों नन्द बबा की सौं री ॥

(४) कौशल्या जब बोलन जाई, ठुमुकि ठुमुकि प्रभु चलहिं पराई ।
धूसर धूर भरे तनु आये, भूपति विहँसि गोद बैठाये ॥

(?) रसाभास

किसी काव्य में रस व्यञ्जना के होने पर भी 'रस' न मानकर केवल उसका आभास मात्र माना जाता है, उसे रसाभास कहते हैं । इसको समझने के लिए ९ भेद किये जा सकते हैं । (१) शृंगार रसाभास (२) हास्य रसाभास (३) रौद्र रसाभास (४) करुणरसाभास (५) वीभत्स रसाभास (६) भयानक रसाभास (७) वीर रसाभास (८) अद्‌भुत रसाभास और (९) शान्त रसाभास ।

(१) **श्रृङ्गार रसाभास**—गुरुपत्नी तथा अन्य प्रतिष्ठित नारी (भावज, प्रस्नुषा,) (मित्रगृहिणी, परपुरुषगृहीता और भिक्षुका आदि ।) से अनुराग होने पर, अपने प्रियतम के अतिरिक्त अन्य पुरुष के प्रति प्रीति होने पर और नायक अथवा नायिका का अपने से विपरीत पात्र में रति करने में 'शृंगार रसाभास' होगा । यथा—

श्रीरामचन्द्र जी का उर्मिला पर प्रेम और सीता जी का लक्ष्मण पर प्रेम होने में शृंगार रसाभास होगा।

(२) **रौद्र रसाभास**—ज्येष्ठ भ्रातृ, गुरू, पिता, माता, त्यागी, वृद्ध, महापुरुष और ईश्वर आदि अपने से ज्येष्ठ व्यक्तियों पर क्रोध होने पर 'रौद्र रसाभास' होगा। यथा—

भरत जी का अपनी माता कैकेयी पर क्रोध होने में व परशुराम जी पर लक्ष्मणजी का क्रोध होने पर 'रौद्र रसाभास' होगा।

(३) **हास्य रसाभास**—गुरु, पिता, माता, आदि अपने से श्रेष्ठ व्यक्तियों पर हँसने में **हास्य रसाभास** होगा। यथा—
रावण द्वारा रामचन्द्र जी का उपहास करने में हास्य रसाभास होगा।

(४) **करुण रसाभास**—वैराग्यजन्य करुणा में **करुण रसाभास** होता है। यथा—
राजकुमार सिद्धार्थ की विरक्ति पर, गुरु, मातापितादि का करुण दशा को प्राप्त होने में करुण रसाभास होगा।

(५) **वीभत्स रसाभास**—महा अधर्मी व्यक्ति तथा यज्ञार्थ प्राणी (अज, अश्व, नर, नाग, ताम्रचूड़, कपोत महिष आदि) के हिंसन आदि में ग्लानि होने पर **'वीभत्स रसाभास'** होगा। यथा—
जन्मेजय के नागयज्ञ में नागों (सर्पों) को हुताशनार्पण करने के अवसर पर तथा याज्ञिकों द्वारा वध्यपशु के वध करने तथा मांस भक्षणादि के अवसर पर ग्लानि होने में वीभत्स रसाभास होगा।

(६) **भयानक रसाभास**—महान् एवम् दिव्य पुरुषों आदि में भय होने पर 'भयानक रसाभास होगा। यथा—
दुर्गा, भैरवादि के स्वरूपादि को देखकर भयभीत होने में 'भयानकरसाभास होगा।

(७) **वीर रसाभास**—चोर, दुर्जन, अवस्कंदक (डाकू), शत्रु आदि व्यक्तियों में उत्साह होने में वीर रसाभास होगा। यथा—
"शहर में दिनप्रतिदिन बढ़ते हुए दुराचार को देखकर राजा के उत्साहित होने में वीर रसाभास होगा।

(८) **अद्भुत रसाभास**—यंत्र, तंत्र, व मंत्र आदि के प्रभाव से उत्पन्न विस्मय में अद्भुत रसाभास होगा। यथा—
"बाजीगर लोग अपने सिर को काटकर पुनः जोड़कर बता देते हैं, मनुष्य को मुर्गा आदि बना देते हैं और जादू से भस्मी (राख) के रुपये बनाकर बता देते हैं आदि आदि। इसी प्रकार के अनेक ऐन्द्रजालिक कर्मों को देखकर आश्चर्य अवश्य होता है फिर भी ऐसे कर्म अद्भुतरसोत्पादक नहीं कहे जा सकते। सुतराँ यहाँ 'अद्भुत-रसाभास' होगा।

(९) **शान्त रसाभास**—नीच व्यक्ति में शांति का अस्तित्व (मौजूदगी) होने पर शान्त रसाभास होगा। यथा—
'मुनिराज के उपदेश से भील की विरक्ति पर शान्त रसाभास होगा।

(२) भावाभास

जहाँ भावों का वर्णन अनौचित्यपूर्ण हो या जहाँ जो भाव प्रकट न होना चाहिए, वहाँ वे भाव व्यक्त कर देने से भावाभास होता है। यथा—
"साधु में काम, क्रोध, लोभ, मद, मोहादि; ब्रह्मचारी में अब्रम्हता, आदर्श व्यक्ति का लम्पटी होना, सदाचारिणी नारी का व्यभिचारिणी होना, शान्त और भयानक रसों का वर्णन एक साथ करना, साहसी पुरुष का धैर्यहीन होना, उदार व्यक्ति में कृपणता का आभास होना, सरल स्वभावी सज्जन का अत्यन्त क्रोधी होना और महामृत्यूञ्जय का मृत्यू को प्राप्त होने इत्यादि में अनौचित्य भावों का वर्णन कर देने से भावाभाव होगा।"

(३) भावशांति

दीर्घकाल से हृदयगत भावों का किसी कारण एक बारगी दूर हो जाने का वर्णन कर देने से भावशान्ति होगी। यथा—
"एक बार दो शिकारियों ने शेर के शिकार की सोची। प्रभात होते ही वे दोनों मृगयार्थ विन्ध्याटवी की ओर रवाना हो गये। जंगल में प्रविष्ट होते ही दोनों ने अपने भालों पर फल लगा लिए। ज्यों-ज्यों शिकारगाह समीप आता जाता था त्यों-त्यों उनका भय बढ़ता जाता था। यदा-कदा वे शिकारगाह पर पहुँचे

तो क्या देखते हैं कि वहाँ एक मुनिराज समाधिस्थ हैं। ऐसे भयंकर स्थल पर निरस्त्र मुनिराज को देखकर उनका सारा भय जाता रहा।"

समा०—यहाँ शिकारियों के हृदय में पूर्व स्थित 'भय' नामक भाव को मुनिराज को देखते ही—एकदम लुप्त हो जाने का वर्णन किया गया है। अतः यहाँ '**भाव-शांति**' हुई।

(४) *भावोदय*

जहाँ किसी भाव के विलीन होते ही शीघ्र किसी दूसरे भाव के उदय होने का वर्णन कर दिया जाता है, वहाँ भावोदय होता है। यथा—

"शिकारियों ने मुनिराज को अभिवादन किया। तब मुनिराज कहने लगे 'वत्स! तुम शिकारी हो।'

'हाँ, गुरुदेव!'—दोनों ने कहा।

'वत्स! तुम जानते हो इसका क्या परिणाम होगा'।—मुनिराज ने कहा।

'नहीं तो!!'—दोनों ने कहा

'अच्छा तो सुनो—शिकार खेलना एक व्यसन है इस व्यसन के सेवक महापाप के भागी होते हैं और मरकर दुर्गति को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार तुम दूसरे के अंग का छेदन करते हो, ठीक उसी प्रकार एक न एक दिन तुम्हारे भी अंगों का छेदन किया जायगा। तब तुम अपने कुकर्मों पर पश्चात्ताप करोगे।।"

मुनिराजकी इस उक्ति को सुनकर शिकारियों का सुषुप्त पुरुषत्व जाग उठा। वे कहने लगे—'तब गुरुदेव, रक्षा करो' !!!

यहाँ **भावोदय** होगा।

(५) *भावसंधि*

जहाँ दो भावों का वर्णन एक साथ कर दिया जाता है, वहाँ भावसंधि होती है। यथा—

"लखि निज पी को आगमन, हरषी रूपरी खानि।
लखि प्रिय की कृशता महा, चित्त महा अकुलानि॥"

समा०—यहाँ नायिका के हृदय में हर्ष (पति के घर आ जाने से) और विषाद (शरीर की कृशता पर) दो भाव एक ही साथ वर्णित है। अतः यहाँ **'भाव संधि'** होगी ।

(६) *भाव शबलता*

जहाँ दो से अधिक भावों का वर्णन एक साथ कर दिया जाता है, वहाँ भावशबलता होती है। यथा—

"छिन रोवति, छिन हँसि उठत, छिन बोलति छिन मौन ।
छिन छिन पर छीनी परत, भई दशा धौं कौन ॥"

समा०—यहाँ अश्रु, हर्ष, व्याधि, और उन्माद भावों का वर्णन एक साथ कर दिया गया है। सुतरां यहाँ "भाव-शबलता" होगी ।

५. गुण

(१) "ये रसस्याङ्गिनोधर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः ॥"—मम्मटाचार्य

(२) "रसस्यांगित्वमाप्तस्य धर्माः शौर्यादयो यथा ।
गुणाः माधुर्यमोजोऽथ प्रसाद इति ते त्रिधा ॥ — विश्वनाथ.

अर्थात् शौर्यादि की तरह रस के उत्कर्ष-हेतु-रूप स्थायी धर्मों को 'गुण' कहते हैं। अलंकार भी उत्कर्ष के हेतु हैं किन्तु वे अस्थायी हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं—(१) माधुर्य, (२) ओज और प्रसाद।

(१) माधुर्य गुण

जहाँ टवर्ग को छोड़कर अन्य वर्गों द्वारा अनुनासिक वर्गों से युक्त और अनुस्वार वाले वर्गों की प्रचुरता से रेफ (ँ) और लंबे लम्बे सामासिक शब्दों से विहीन, लघु समासों द्वारा मधुर रचना की जाती है, वहाँ 'माधुर्य' गुण होता है। इस गुण का सम्बन्ध चित्त की 'द्रुति' अथवा स्यन्दन (पिंघलना) वृत्ति से है, जिसके द्वारा पाठक, श्रावक या प्रेक्षक का हृदय द्रवीभूत हो जाता है।

इस गुण का प्रयोग अधिकतः शृंगार, करुण और शान्त रसों में होता है। हास्य और अद्भुत रसों में केवल इसका आभास मात्र पाया जाता है। वामन के मतानुसार इसमें "वैदर्भी" रीति और आचार्य मम्मट के मतानुसार 'उपनागरिका' वृत्ति होती है। यथा—

(१) धर्म धुरीण-धीर-नय-नागर।
सत्य-सनेह-शील-सुख-सागर ॥

(२) पुनि नाचत रंग उमंग भरी। तुम भक्ति विषै पग एम धरी ॥
झननं झननं झननं झननं। सुर लेत तहाँ तननं तननं ॥

(३) काहू घर पुत्र जायौ काहू के वियोग आयौ,
काहू राग रंग काहू रोआ रोई करी है।

जहाँ भानु ऊगत उछाह गीत गान देखे,
साँझ समै ताहि फिर हाय हाय परी है ॥
ऐसी जगरीत को न देख भयभीत होत,
हा हा ! नर मूद तेरी मति कौन हरी है ।
मानुष जनम पाय सोवत बिहाय जाय,
खोवत करोरन की एक एक घरी है ॥

(२) *ओज गुण*

जहाँ दित्व वर्णों (ग्ग, क्क, च्च), संयुक्त वर्णों, रेफ व अर्द्धरकार युक्त वर्णों के साथ टवर्ग की प्रचुरता से रचना की जाती है, वहाँ ओज गुण होता है । इसका संबंध चित्त की 'दीप्ति' अर्थात् उत्तेजना वृत्ति से है, जिसे श्रवण करने या पठन करने से श्रावक व पाठक के हृदय में 'उत्तेजना' का आविर्भाव होता है ।

इस गुण का प्रयोग अधिकतः वीर, रौद्र और भयानक रसों में होता है । 'वीभत्स' रस में भी कभी-कभी इस गुण का आभास पाया जाता है । वामन के मतानुसार ओज प्रधान रचना में 'गौड़ी' रीति व आचार्य मम्मट के मत से 'परुषा' वृत्ति होती है । यथा—

(१) रण सुभट्ट बै भुट्ट लौं, गहि असि कट्टत मुण्ड ।
उठि कबन्ध जुट्टत कहूँ, कहुँ लुट्टत रिपु-रुण्ड ॥

(२) बंकक्करि अति डंकक्करि अस संकक्कुलि खल ।
सोचच्चकित भरोच्चच्चलिय, विमोचच्चख जल ॥
तट्टट्टइ मन कट्टट्टिक सोइ रट्टट्टिल्लिय ।
सद्दद्दि सिदिस मद्दद्दबि भइ रद्दद्दिल्लय ॥

(३) जगी जोति जहँ जूझ की, खगी खंग खुलि झूमि ।
रँगी रुधिर सों धूरि सो, धन्य धन्य रणभूमि ॥

(३) *प्रसाद गुण*

जहाँ सरल सुबोध भाषा में, कर्ण कटुशब्दों और दीर्घ समासों का परिहार

कर काव्य की रचना की जाती है, वहाँ प्रसाद गुण होता है। इस गुण का संबंध चित्त की विकास अर्थात् चित्त को प्रसन्न करने वाली वृत्ति से है। इसमें वामन के मतानुसार 'पाँचाली' रीति व आचार्य मम्मट के मतानुसार 'कोमला' वृत्ति होती है।

"शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छ जलवत्सहसैवयः।
व्याप्नोत्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थितिः॥"

अर्थात् शुष्क इन्धन में अग्नि के प्रकाश व स्वच्छ कपड़े में जल की आभा की तरह प्रसाद गुण द्वारा चित्त में एक साथ अर्थ का प्रकाश हो जाता है। अर्थात् प्रसाद गुण वहीं होता है, जहाँ रचना अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा में होती है। इसका संबंध अग्नि (ओज गुण) और 'जल' (माधुर्य) दोनों से है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रसाद गुण का प्रयोग नवों रसों में बेरोक टोक होता है। यह सुविधा 'ओज' और 'माधुर्य' को नहीं है। सुतरां 'प्रसाद' को हम 'गुणपति' अथवा 'गुणराज' कह सकते हैं। यथा—

(१) प्रभु मो हिय आप सदा बसिये। जबलौं वसुकर्म नहीं नसिये॥
तबलौं तुम ध्यान हिये वरतौं। तबलौं श्रुत चिन्तन चित्तरतौं॥

(२) अच्युत चरण तरंगिणी शिव-सिर मालती माल।
हरि न बनायो, सुरसरि! कीजे इंदव-भाल॥

(३) शुद्धि ते मीन, पीये पय बालक, रासभ अंग विभूति लगाये।
राम कहे शुक, ध्यान गहे बक, भेड़ तिरें पुनि मुंड मुड़ाये॥
वस्त्र बिना पशु, व्योम चलै खग, व्याल तिरे नित पौन के खाये।
ये तो सब जड़ रीति विलक्षण! मोक्ष नहीं बिन तत्त्व के पाये॥

(४) ग्रीषम की रितु माँहि जल थल सुखिजाय,
परत प्रचण्ड धूप आगि सी बरत है।
दावाकी सी ज्वाला माल बहत बयारि अति,
लागत लपट कोऊ धीर न धरत है॥
धरती तपत मानों तवा-सी तपाय राखी,
बड़वा अनल सम शैल जो जरत है।

ताके शृंग-शिला पर जोर जुग पाँव धार,
　　करत तपस्या मुनि करम हरत है ॥

(४) ग्रीषम में धूप परे तामें भूमि सारी जरै,
　　फूलत है आक पुनि अति ही उमहिकै ।
वर्षारितु मेघ झरे ता में वृक्ष कोइ फरे,
　　जरत जवासा अघ आपुहि ते डहिकै ॥
रितु को न दोष कोऊ, पुण्य-पाप फल दोऊ,
　　जैसे जैसे किये पूर्व तैसे रहि सहिकै ।
कोई जीव सुखी होहिं, कोई जीव दुखी होंहि,
　　देखहुँ तमासो भैया न्यारे नैकु रहिकै ॥

६. रीति या वृत्ति

रीति—विशिष्ट पद-रचना को रीति कहते हैं। आचार्य वामन के मतानुसार "रीतिरात्मा काव्यस्य" अर्थात्—रीति ही काव्य की आत्मा है। रीति मुख्यतः तीन हैं—(१) वैदर्भी, (२) गौड़ी और (३) पाञ्चाली।

(१) वैदर्भी (उपनागरिका)

जहाँ टवर्ग को छोड़कर, अन्य मधुर वर्णों द्वारा, अनुनासिक और अनुस्वार वाले वर्णों से युक्त, बड़े-बड़े समासों से विहीन तथा लघु समासों से युक्त मधुर रचना की गई हो, वहाँ वामन के मतानुकूल वैदर्भी रीति और मम्मट के मतानुकूल उपनागरिका वृत्ति होती है। इसके अनुकूल 'माधुर्य' गुण माना गया है। यथा—

वही मंजु मही वही कलित कलिंदजा है,
ग्राम और धाम भी विशेष छबिधाम हैं।
वही वृन्दावन है निकुञ्ज, द्रुमपुञ्ज भी हैं,
ललित लताएँ लोल लोचनाभिराम हैं॥
वही गिरिराज गोपजन का समाज वही,
वही सब साज-बाज आज भी ललाम हैं।
ब्रज की छटा विलोक आता है मन में यही,
अब भी यहाँ ही शुभनाम घनश्याम हैं॥

(२) गौड़ी (परुषा)

जहाँ ट वर्ग से युक्त, द्वित्व वर्णों, संयुक्त वर्णों, रेफ और अर्द्धरकार युत वर्णों की प्रचुरता से लम्बे-लम्बे समासों द्वारा रचना की जाती है, वहाँ वामन के मतानुकूल 'गौड़ी' रीति और मम्मट के मतानुकूल 'परुषा' वृत्ति होती है।

इसके अनुकूल गुण 'ओज' माना गया है। यथा—

बसन बटोरि बोरि-बोरि तेल तमीचर,
खोरी-खोरि धाइ आइ बाँधत लंगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै कै,
लात के अघात सहै जी में कहै कूर है॥
बाल किलकारी कै कै, तारी दै दै गारी देत,
पाछे लोग बाजत किसान ढोल तुरहैं।
बालधी बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्हि आगि,
विंध्य की दवारि, कैधों कोटिसत सूर हैं॥

(३) पाञ्चाली (कोमला)

जहाँ सरल सुबोध भाषा में, कर्णकटु शब्दों का परिहार कर काव्य की रचना की जाती है, वहाँ वामन के मतानुकूल 'पाञ्चाली' रीति व मम्मट के मतानुकूल 'कोमला' वृत्ति होती है।

इसका सम्बन्ध 'प्रसाद' गुण से जोड़ा गया है।

यथा—**हाय दई! यहि काल के ख्याल में, फूल से फूलि सभी कुँभिलाने।**
या जगबीच बचे नहीं मीच पै, जे उपजे ते मही में मिलाने॥
'देव', अदेव, बली, बलहीन; चले गये मोह की हौस हिलाने।
रूप, कुरूप, गुनी, निगुनी, जे जहाँ उपजे ते तहाँ ही बिलाने॥

विशेष द्रष्टव्य

वृत्तियों का विशद वर्णन 'अलंकार-प्रदर्शन' वर्ग में वृत्त्यनुप्रास अलंकारान्तर्गत किया गया है। मम्मटाचार्य्य ने रीतियों और वृत्तियों को एक ही साँचे में ढाल दिया है, वे रीतियों की पृथक् सत्ता न मानकर उसे वृत्ति के अंतर्गत ही मानते हैं, प्रत्युत इन दोनों में सूक्ष्म-भेद अवश्य है। 'रूप्यक' ने वृत्तियों का सम्बन्ध अर्थ से और रीतियों का संबंध शब्द से बतलाया है।

भरतमुनि ने भी अपने 'नाट्य-शास्त्र' में वृत्तियों का उल्लेख किया है। वह इस प्रकार है—

"श्रृंगारे चैव हास्ये च वृत्तिः स्याद्कैशिकीति स ।
सात्वती नाम साज्ञेया वीर रौद्राद्भुताश्रया ॥
भयानके च वीभत्से रौद्रं चारभटी भवेत् ।
भारती चापि विज्ञेया करुणाद्भुत संश्रया ॥" —(नाट्य-शास्त्र)

अर्थात् (१) **कैशिकि वृत्ति**—यह श्रृंगार और हास्य रस में होती है ।

(२) **सात्वती वृत्ति**—यह वीर, रौद्र और अद्भुत रस में होती है ।

(३) **आरभटी वृत्ति**—यह भयानक, वीभत्स और रौद्र रस में होती है ।

(४) **भारती वृत्ति**—यह करुण और अद्भुत रस में होती है ।

७. अलङ्कार-प्रदर्शन वर्ग

अलंकार का मुख्यार्थ है—'आभूषण'। परन्तु यह अपने एक विशेष अर्थ में रूढ़ि हो गया है। अलंकार कविता में वही कार्य करते हैं, जो कि स्त्री के लिए आभूषण। इस दृष्टि में "अलंकरोतीति अलंकारः" (जो काव्य को अलंकृत करे, वही अलंकार है।) और "काव्यशोभान्करान्धर्मानलंकारन्प्रचक्षते" (काव्य की शोभा करने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं।) इत्यादि इसके लक्षण होते हैं परन्तु ये अनुचित और अपर्याप्त से जान पड़ते हैं क्योंकि केवल अलंकार ही काव्य की शोभा नहीं बढ़ाते—रस, ध्वनि, गुण, रीति आदि भी तो शोभा बढ़ाते हैं फिर क्योंकर केवल अलंकारों की मुख्यता ग्रहण की जा सकती है। फिर काव्य की रमणीयता की दृष्टि से इसका निम्नाङ्क (फसड्डी) अंकित किया गया है और अलंकार-प्रधान काव्य को अवर (अ = नहीं, वर = श्रेष्ठ) काव्य अर्थात् निम्न कोटि का काव्य कहा गया है। अतः उपयुक्त दण्डी की तत्तद्विषयक परिभाषा नितांत एकांगी है।

आचार्य वामन ने गुणों को काव्य की शोभा करने वाले कहा है और अलंकारों को उस शोभा का उद्दीपक कहा है।

(काव्य शोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः ।)

(तदतिशय हेतवस्त्वलंकाराः ॥)— काव्यालंकार-सूत्र

और आचार्य विश्वनाथ ने 'अलंकार का लक्षण इस प्रकार दिया है— "शोभा को बढ़ाने वाले रस, ध्वनि, गुणीभूत व्यंग्य व गुणादि के उत्कर्षोपकारक, जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं, वे वलय (भुजबंध) की भाँति सौंदर्योपकरण मात्र हैं"।

साहित्य-दर्पणकार के मतानुसार अलंकार को 'शब्द और अर्थ का अस्थिर धर्म स्वीकृत करने' पर अलंकारों के ३ भेद हो जाते हैं—(१) शब्द अलंकार, (२) अर्थ अलंकार और (३) उभय (शब्द और अर्थ) अलंकार।

(१) शब्दालङ्कार

जो शब्दों द्वारा काव्य में चमत्कार पैदा कर देते हैं, उसे शब्दालंकार कहते हैं। यदि उन शब्दों के स्थान पर उन्हीं के प्रतिशब्द रख दिये जायँ तो शब्द चमत्कार नष्ट हो जाता है। यथा—

"शोक हरता है अशोक। ओक में बैठा गाता ओक॥"

समा०—यहाँ 'शोक' और 'ओक' शब्दावृत्ति के कारण एक विशिष्ट प्रकार का चमत्कार उत्पन्न हो गया है। सुतराँ यहाँ शब्दालंकार होगा परन्तु यदि 'शोक' और 'ओक' के स्थल पर क्रमशः इन्हीं के प्रतिशब्द 'दुःख' और 'भवन' आदि रख दिये जायँ, तो चमत्कार नष्ट हो जाता है।

इसके प्रमुख ७ भेद हैं—(१) अनुप्रास, (२) यमक, (३) श्लेष, (४) पुनरुक्तवदाभास, (५) पुनरुक्तिप्रकाश, (६) वीप्सा और (७) वक्रोक्ति।

१ अनुप्रास

अनुप्रास का शब्दार्थ ही है—अनु (बारम्बार) प्र (चमत्कारयुक्त) आस (रखना)। अर्थात् जहाँ शब्दों को चमत्कारयुक्त बारम्बार रखा जाय, वहाँ अनुप्रासालंकार होता है। यथा—

"धर्म-धुरीण-धीर-नय-नागर।"

समा०—उपर्युक्त उदाहरण में क्रमशः 'ध' और 'न' शब्दों की आवृत्ति हुई, सुतरां यहाँ अनुप्रास अलंकार होगा।

इसके मुख्य ५ भेद हैं—(१) वृत्त्यनुप्रास (२) छेकानुप्रास (वैदग्धानुप्रास) (३) श्रुत्यनुप्रास, (४) लाटानुप्रास और (५) अंत्यानुप्रास।

(१) वृत्त्यनुप्रास

जहाँ वर्णों की आवृत्ति एक बार से अधिक की गई हो, वहाँ वृत्ति-अनुप्रासालंकार होता है। यथा—

"सुखिया सुख साधन पाते हैं। इतने पर भी अकुलाते हैं॥"

समा०—यहाँ 'स' शब्द क्रमशः तीन बार आया है, इसलिए यहाँ वृत्ति-अनुप्रास समझना चाहिए।

वृत्ति के गुणों के कारण इसके ३ भेद हैं—(१) उपनागरिका (२) कोमला और (३) परुषा

(१) **उपनागरिका-वृत्ति**—जहाँ ट वर्ग को छोड़कर शेष मधुर वर्णों द्वारा, सानुनासिक वर्णों से युक्त एवं अनुस्वार वाले वर्णों की प्रचुरता से रचना की जाय, वहाँ उपनागरिका वृत्ति होती है।

यथा—"**समता मराल ने न नेक कभी कर पाई,**
मंजु मंद मंद नंद-नंदन के चाल की।"

रीति—वैदर्भी।

गुण—माधुर्य

रस—शृंगार, करुण और शान्त।

(२) **कोमला-वृत्ति**—जहाँ सुबोध और सरल शब्दों द्वारा काव्य में चमत्कार प्रदर्शित किया जाता है, वहाँ कोमला-वृत्ति होती है।

यथा—"**भजरे मन नंद-नंदन, बिपति-बिदार।**
गोपीजन-मन-रंजन, परम उदार॥"

रीति—पाञ्चाली।

गुण—प्रसाद।

रस—नौ रस।

(३) **परुषा वृत्ति**—जहाँ ट वर्ग, दित्व वर्ण, रेफ व अर्द्धरकारयुत श, ष आदि कठोर वर्णों द्वारा रचना में चमत्कार दिखाया जाता है, वहाँ परुषा-वृत्ति होती है।

यथा—"**पथरौटा काठ को कठौता कहूँ दीसै नाहिं,**
पीतर को लोटो हौ कटोरो है न बाटकी।"

रीति—गौड़ी।

गुण—ओज।

रस—वीर, रौद्र, भयानक और कभी-कभी हास्य और वीभत्स रस भी।

(२) छेकानुप्रास

जहाँ एक वर्ण या अनेक वर्णों की आवृत्ति केवल एक बार हो, वहाँ

छेकानुप्रास होता है। यह अलंकार 'छेक' अर्थात् विद्वानों को प्रिय है, इसलिए इसे 'छेकानुप्रासालंकार' कहते हैं। यथा—

"गुरू-गोविन्द **दोनों खड़े** का के **लागूँ पायँ** ॥"

समा०—उपर्युक्त उदाहरण में 'ग' और 'क' शब्द की आवृत्ति केवल एक बार हुई है। अतः यहाँ **छेकानुप्रास** अलंकार होगा।

(३) श्रुति-अनुप्रास

जहाँ एक स्थान से बोले जाने वाले वर्णों की आवृत्ति होती है—वहाँ श्रुति-अनुप्रास होता है।

विशेष—किसी वर्ण का उच्चारण मुख के जिस भाग से होता है, उसे उस वर्ण का 'स्थान' कहते हैं इन स्थानों की संख्या नौ है—

(१) **कण्ठ-स्थान**—इससे अ, आ, क, ख, ग, ङ, ह और समस्त विसर्ग वर्णों का उच्चारण होता है। अतः ये सब वर्ण कण्ठस्थानीय-वर्ण हैं।

(२) **तालु-स्थान**—इससे इ, ई, च, छ, ज, झ, य और श वर्णों का उच्चारण होता है।

(३) **मूर्द्धा स्थान**—ऋ, ॠ, ट, ठ, ड, ढ, ण, र और ष वर्णों का उच्चारण मूर्द्धा-स्थान से होता है।

(४) **दन्त-स्थान**—इससे त, थ, द, ध, न ल और स वर्णों का उच्चारण होता है।

(५) **औष्ठ-स्थान**—उ, ऊ, प, फ, ब, भ और म वर्णों का उच्चारण होता है।

(६) **कण्ठ-तालु-स्थान**—इससे ए और ऐ वर्णों का उच्चारण होता है।

(७) **कण्ठ-औष्ठ-स्थान**—इससे ओ और औ वर्णों का उच्चारण किया जाता है।

(८) **दन्त-औष्ठ-स्थान**—इससे 'व' वर्ण का उच्चारण होता है।

(९) **अनुनासिक**—ङ, य, ण, न, म और चन्द्रबिन्दु 'ँ' युक्त शब्द

श्रुति-अनुप्रास का उदाहरण

"सुभट-सीस-सोनित-सनी समरभूमि धनि धन्य।"

समा०—यहाँ स, त, न और ध दन्त-स्थानीय, उ, भ और म ओष्ठ स्थानीय तथा 'इ' व 'ई' तालुस्थानीय वर्णों की आवृत्ति हुई है, अतः यहाँ श्रुति-अनुप्रास होगा।

(४) *लाटानुप्रास*

जहाँ शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति हो परन्तु अन्वय करने पर तात्पर्य बदल जाय, वहाँ लाट-अनुप्रास-अलङ्कार होता है। यथा—

"पूत कपूत तो क्यों धन सञ्चय।
पूत सपूत तो क्यों धन सञ्चय॥"

समा०—यहाँ पूर्वार्द्ध का अन्वय 'कपूत' के 'क' वर्ण के साथ है और उत्तरार्द्ध का अन्वय 'सपूत' के 'स' वर्ण के साथ। शेष शब्द एक से ही हैं। और उनका अर्थ भी एक ही है परन्तु अन्वय करने पर तात्पर्य बिलकुल बदल जाता है।

(१) पूर्वार्द्ध का तात्पर्य है—"यदि पुत्र 'कुपुत्र' हुआ तो धन सञ्चय करने से क्या लाभ? वह तो उस धन का दुरोपयोग ही करेगा। और

(२) उत्तरार्द्ध का तात्पर्य है—"यदि पुत्र 'सुपुत्र' हुआ तो धन संचय करने की क्या आवश्यकता, वह तो स्वयं परिश्रम करके धनोपार्जन करके अपनी उदर-पूर्ति कर लेगा।

(५) *अन्त्यानुप्रास*

जहाँ पदान्त में एक ही व्यञ्जन और एक ही स्वर की आवृत्ति हो, वहाँ अन्त्यानुप्रास होता है। यथा—

"ससि बाल खरो। शिव भाल धरो।"

समा०—इसके पदान्त में 'अ' स्वर और 'रो' व्यञ्जन की आवृत्ति हुई है। अतः यहाँ अन्त्यानुप्रास होगा।

[२] *यमक*

जहाँ शब्दों की आवृत्ति हो और प्रत्येक शब्द का अर्थ भिन्न हो, वहाँ यमकालंकार होता है) यथा—

"कनक कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय।"

समा०—यहाँ 'कनक' शब्द की आवृत्ति हुई है और अर्थ भी क्रमशः भिन्न-भिन्न हैं पहले 'कनक' का अर्थ है 'स्वर्ण' और दूसरे 'कनक' का अर्थ है 'धतूरा'। अतः यहाँ 'कनक-कनक' में यमक अलंकार होगा।

इसके २ भेद हैं—(१) अभंगपद और (२) सभंग-पद

(१) अभंगपद यमक

जहाँ यमकालंकारार्थ शब्दों को तोड़ने की आवश्यकता न पड़े वहाँ अभंगपद यमक अलंकार होता है। यथा "ओक में बैठा गाता ओक" में 'ओक' शब्द को तोड़ने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये यहाँ पर अभंगपद यमक अलंकार होगा। ओक=घर, ओक—पक्षी विशेष।

(२) भङ्गपद

जहाँ यमक अलंकारार्थ शब्दों को तोड़ने की आवश्यकता पड़े। वहाँ भङ्गपद यमक अलंकार होता है। यथा "शोक हरता है खड़ा **अशोक**।" (शोक= दुख। अशोक=एक वृक्ष) में भङ्गपद अलंकार होगा क्योंकि यहाँ अंतिम शोक शब्द के लिये 'अशोक' शब्द को तोड़ने की अपेक्षा होगी।

(३) पुनरुक्त वदाभास

पुनरुक्तवदाभास का शाब्दिक अर्थ है—पुनः (फिर) उक्ति (कही हुई बात) वत (तरह) आभास (झलक) अर्थात् जहाँ प्रथम कहे हुए शब्द के आगे उसी के पर्यायवाची शब्द के आ जाने के कारण प्रथम कहे हुये शब्द का आभास होवे, परन्तु वास्तव में ऐसा न हो। यथा—

'हंस मराल दोउ क्रीडित थे उत।'

समा०—हंस और मराल क्रमशः एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। इससे इस छंद में पुनरुक्ति सी मालुम पड़ती है। परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि यहाँ पर मराल का अर्थ होगा 'हाथी'। इसलिये यहाँ **पुनरुक्तवदाभास** अलंकार है।

(४) पुनरुक्ति प्रकाश

पुनरुक्ति प्रकाश का अर्थ है, एक बार कही हुई बात को पुनः कहना'।

अर्थात् जहाँ पर एक ही शब्द की एक या दो बार आवृति हो और अर्थ एक ही रहे, वहाँ पर पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार होता है। यथा—

"धीरे धीरे रे मना, धीरज से सब होय।"

इसमें 'धीरे' शब्द की एक अर्थ में आवृति होने से "पुनरुक्ति प्रकाश" अलंकार होगा।

(५) वीप्सा

जहाँ आदर, आश्चर्य, उत्साह, घृणा, शोक, हर्षादि मन के भावों को सूचित करने के लिये शब्दों की आवृत्ति हो। यथा—

(१) **हा! हा! नर मूढ़ तेरी मति कौने हरी है।**

(२) **रंगी रुधिर, सो धूरि सों, धन्य धन्य 'रणभूमि'**

(३) **मम प्रिय सुत हा! हा! राम! हा राम! राम!**

(४) **बचाओ, बचाओ! मरा मैं मरा हाय!**

(५) **हे भगवन, त्राहि माम् त्राहि माम्!**

उपर्युक्त उदाहरणों में 'हा हा' 'धन्य-धन्य' 'बचाओ बचाओ' और "त्राहिमाम त्राहिमाम' शब्द क्रमशः शोक, हर्ष, अशरणता और दीनता का आवेग प्रकट करने के लिये आये हैं। अतः यहाँ वीप्सालंकार होगा।

(६) श्लेष

श्लेष शब्द का अर्थ है, "चिपका हुआ।"

जिस अलंकार में एक शब्द के साथ कई अर्थ चिपके हुए होते हैं, वहाँ श्लेष अलंकार होता है। यथा—

"रावण-सिर-सरोज बनचारी। चलि रघुवीर शिलीमुख धारी॥"

में "शिलीमुख शब्द होने के कारण श्लेषालंकार है। उसके क्रमशः बाण, और भ्रमर" अर्थ हैं।

इस अलंकार के दो भेद हैं। (१) शब्द-श्लेष और (२) अर्थ श्लेष।

(१) शब्द श्लेष

जहाँ एक शब्द के एक से अधिक अर्थ लिये जाय, वहाँ शब्द श्लेष

अलंकार होता है। यदि उस स्थान पर उसका प्रतिशब्द रख दिया जाय तो अलंकारिता नष्ट हो जाती है। यथा—

"चरण धरत चिंता करत; चितवत चारहुँ ओर।
'सुवरण' को देखत फिरें; कवि व्यभिचारी चोर॥"

[सुवरण (सुवर्ण) = (१) सुंदर अक्षर (२) सुन्दरी और (३) सोना] इसमें 'सुवरण' शब्द के उपर्युक्त तीन अर्थ होने के कारण ही चमत्कार है। यदि 'सुवरण' के स्थान पर उसका प्रतिशब्द कलधौत, चामीकर, शातकौंभ, तपनीय और कनक, इत्यादि रख दिये जायँ, तो अलंकारिता नष्ट हो जायगी। इसके दो भेद हैं—(१) अभंग पद (२) भंगपद

(१) अभंग पद

जहाँ श्लेष अलंकार की प्राप्ति के लिये शब्दों को तोड़ा मरोड़ा न जाय! यथा—

"विपुल धन अनेकों रत्न हो साथ लाये।"
प्रियतम, बतायो लाल मेरा कहाँ है?

[लाल = (१) पुत्र (श्री कृष्ण) (२) माणिक्यमणि] यहाँ 'लाल' शब्द को बिना तोड़े ही श्लेषत्व है। अतः यहाँ **'अभंग पद शब्द श्लेष'** होगा।

(२) भङ्गपद

जहाँ श्लेष अलंकार की प्राप्ति के लिये शब्द को तोड़ने की आवश्यकता पड़े। यथा—

"हरि विहँसे लखि पद्मानन।"

[पद्मानन = (पद्मा = कमला + आनन = मुख) और (पद्म = कमल)

(+ आनन = मुख) यहाँ 'पद्मानन' पद में भंगशब्दश्लेष है। क्योंकि इसकी प्राप्ति के लिये, शब्द को तोड़ना पड़ता है। पहला अर्थ श्रीकृष्ण के पक्ष में लगता है। जो लक्ष्मी के मुख को देखकर हँस रहे हैं। और दूसरा अर्थ नायक पर घटित होता है। जो कमल मुखी (नायिका) को देखकर हँसता है।

(३) अर्थ-श्लेष

जहाँ शब्दों का अर्थ तो एक ही होता हो परन्तु वह दो या दो से अधिक पक्षों पर घटित होता हो, वहाँ अर्थ-श्लेष होता है। यथा—

"जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यहि सयानो काम॥"

समा०—यहाँ 'जल' और दाम (रुपये) का समर्थन—'दोनों हाथ उलीचिये''—वाक्य से किया गया है। इस वाक्य का एक भी शब्द श्लेषार्थी नहीं है, फिर भी यह क्रमशः 'जल' और 'संपत्ति'—दो पक्षों पर-घटित हो रहा है। अतः यहाँ **अर्थ-श्लेष** होगा।

(७) वक्रोक्ति

वक्रोक्ति का अर्थ है—वक्र (टेढ़ा, घुमा फिराकर) उक्ति (कथन) अर्थात् कही गई बात का अर्थ घुमा फिराकर दूसरा ही ग्रहण करना। जहाँ इस प्रकार का अर्थ ग्रहण किया जाता है, वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। यथा—

"प्रभुता पाइ सबै सुखी जग में।"

अर्थात् सब दुःखी हैं। यहाँ यह अर्थ कण्ठविकार से दूसरा ही ग्रहण किया है। अतः यहाँ वक्रोक्ति अलंकार होगा।

इसके २ भेद हैं—(१) श्लेष-वक्रोक्ति और (२) काकुवक्रोक्ति।

(१) श्लेष-वक्रोक्ति

जहाँ किसी शब्द का अर्थ श्लेष द्वारा भिन्न कर दिया जाय, वहाँ श्लेष वक्रोक्ति अलंकार होता है। यथा—

(श्रीकृष्ण रुक्मिणी के यहाँ गये। उनसे उन्होंने कहा)
श्रीकृष्ण—"खोलो जू किवाँर।"
रुक्मिणी—"तुम कौ हो एतीबार।"
श्रीकृष्ण—"हरि नाम है हमारो।"
(रुक्मिणी ने 'हरि' का अर्थ 'बन्दर' लगाकर कहा)
रुक्मिणी—"बसौ कानन-पहार में।

(अर्थात् घर में हरि (बन्दर) का क्या काम ? जाओ किसी जंगल में या पहाड़ में निवास करो।)

(२) काकु वक्रोक्ति

जहाँ वक्ता की कथितोक्ति का अर्थ श्रोता काकु (कंठ-विकार) से अन्य लगा लेता है, वहाँ 'काकु-वक्रोक्ति' होती है। यथा—

(रावण ने अंगद से अपनी भुजाओं की शक्ति की डींग मारी, इस पर से अंगद ने कहा)

"सो भुज बल राख्यो उर घाली।
जीतेउ सहसबाहु, बलि, बाली॥"

समा०—उपर्युक्त उदाहरण में 'जीतेउ' शब्द का अर्थ काकु से 'हारेउ' अर्थात् हारे थे कर दिया है। अतः यहाँ काकुवक्रोक्ति है।

[२] अर्थालङ्कार

जो अर्थ में चमत्कार उत्पन्न करे उसे अर्थालंकार कहते हैं। इसके कई भेद हैं, परन्तु हम यहाँ मुख्य-मुख्य अर्थालंकारों का ही वर्णन करेंगे।

(१) उपमा

उपमा का अर्थ है—उप (समीप) मा (तोलना) अर्थात् समीप रखकर दो पदार्थों की परस्पर समानता बतलाना।

जहाँ इस प्रकार से दो वस्तुओं (उपमेय और उपमान) की परस्पर तुलना की जाय, वहाँ उपमालङ्कार होता है। यथा—

"नव-उज्वल जलधार हार-हीरक सी सोहति।"

समा०—यहाँ 'नव उज्वल जलधार' की तुलना 'हार हीरक' से की गई है। अतः यहाँ उपमालंकार होगा।

उपमा के ४ अङ्ग

(१) **उपमेय**—वह वस्तु, जिसे उपमा दी जाय। जैसे—मुख, नेत्र आदि। उपमेय को 'वर्ण्य, मुख्य और प्रस्तुत भी कहते हैं।

(२) **उपमान**—वह वस्तु, जिससे उपमा दी जाय। जैसे—चन्द्रमा, खञ्जन आदि इसको 'अवर्ण्य, विमुख्य और अप्रस्तुत भी कहते हैं।'

(३) **वाचक**—वह शब्द, जो उपमा को प्रकट करे। यथा—'सम' समान, सरिस, इमि, जिमि, इव' आदि।

(४) **साधारण धर्म वा गुण**—उपमेय और उपमान की जिस गुण में तुलना की जाय, उस गुण को साधारण धर्म कहते हैं। यथा—सौंदर्य, शौर्य, चातुर्य, विद्वता, सरलता और कुटिलता आदि।

उदाहरण—

(१) राधा सुंदरता में रति के समान सुन्दर है।

(२) मोहन कालिदास के समान विद्वान् है।

(३) रामसिंह वीरता में अर्जुन है।

(४) प्रेमचन्द सरलता में युधिष्ठिर के समकक्ष है।

(५) सुलोचना पतिपरायणता में सीता के तुल्य है।

	(१) उपमेय	(२) उपमान	(३) वाचक	(४) साधारण धर्म
(१)	राधा	रति	समान	सुन्दरता
(२)	मोहन	कालिदास	समान	×
(३)	रामसिंह	अर्जुन	×	वीरता
(४)	प्रेमचन्द	युधिष्ठर	समकक्ष	सरलता
(५)	सुलोचना	सीता	तुल्य	पति-परायणता

(१) पूर्णोपमा

जहाँ उपमा के ४ अङ्ग उपस्थित होते हैं, वहाँ 'पूर्णोपमालंकार' होता है। यथा—

"राधा सुन्दरता में रति के समान सुन्दर है।"

समा०—यहाँ उपमा के ४ अंग उपस्थित हैं, अतः यहाँ पूर्णोपमालंकार होगा (१) उपमेय (राधा) (२) उपमान (रति) (३) धर्म (सौंदर्य) और (४) वाचक (समान)।

(२) लुप्तोपमा

उपमा का जो अङ्ग अनुपस्थित होता है, उसी नाम से 'लुप्तोपमा' होती है। यथा—(१) वाचक लुप्ता, (२) धर्मलुप्ता, (३) उपमान लुप्ता और (४) उपमेयलुप्ता।

(१) **वाचकलुप्ता**—जहाँ उपमा में वाचक अंग लुप्त होता है, वहाँ वाचक-लुप्तोपमा होती है। यथा—

"मोहिनी-मुख-विधु-वदन सुहावन।"

समा०—यहाँ समान सरिस, इव आदि वाचक शब्दों का लोप हो गया है। अतः यहाँ वाचकलुप्तोपमा होगी।

(२) **धर्मलुप्ता**—जहाँ उपमा में धर्म अंग अनुपस्थित होता है, वहाँ धर्मलुप्तोपमा होती है। यथा—

"सीताजी का मुख चन्द्रमा के समान है।"

समा०—यहाँ उपमा 'सौंदर्य' गुण अनुपस्थित है। अतः यहाँ धर्मलुप्तोपमा होगी।

(३) **उपमानलुप्ता**—जहाँ उपमा में उपमान अंग लुप्त हो, वहाँ उपमान लुप्तोपमा होती है। यथा—

"कलावती है कलानिधान।"

में 'चन्द्र' उपमान का लोप हो गया है। अतः 'उपमानलुप्तोपमा' होगी।

(४) **उपमेयलुप्ता**—जहाँ उपमा में 'उपमेय' अंग अनुपस्थित होता है, वहाँ उपमेयलुप्तोपमा होती है। यथा—

(१) **"कलपलता-सी अतिशय कोमल।"**

और (२) **"कलप-बेलि जिमि बहुविधि लाली।"**

में उपमेय (सुन्दरी) का लोप हो गया है, अतः यहाँ उपमेयलुप्तोपमा होगी।

(३) *मालोपमा*

जहाँ एक ही उपमेय के माला में पुष्प के सदृश अनेक उपमान ग्रंथित होते हैं, वहाँ 'मालोपमा' होती है। यथा—

"सिन्धु के अगस्त और, बाँस-बन दावानल,
तिमिर पै तरान किरन समाज हो।
कंस के कन्हैया और चूहों के बिडाल पुनि,
कैटभ की कालिका विहंगम के बाज हो॥

'भूषण' भनत सब असुर के इन्द्र पुनि,
पन्नग के कुल के प्रबल पच्छीराज हो।
रावण के राम सहसबाहु के परसुराम,
दिल्लीपति दिग्गज के सिंह सिवराज हो॥"

समा०—यहाँ एक ही उपमेय (छत्रपति शिवाजी) के अगस्त आदि अनेक उपमान कहे गये हैं। अतः यहाँ मालोपमालंकार होगा।

(४) *उपमेयोपमान*

जहाँ परस्पर उपमेय को उपमान और उपमान को उपमेय बना दिया जाय, वहाँ 'उपमेयोपमान' अलङ्कार होता है। यथा —

(१) **"मुख चन्द्र सम, चन्द्र मुख सम।"**

(२) **"तुव पद पंकज सम, पंकज तुव पद सम।"**

समा०—उपर्युक्त उदाहरण में 'मुख' और 'पद' उपमेय तथा 'चन्द्र' और 'पंकज' उपमान को परस्पर उपमान और उपमेय बना दिया गया है। अतः यहाँ उपमेयोपमान अलंकार होगा।

(५) *ललितोपमा*

जहाँ उपमेय और उपमान में 'लीलादिक पद' से समता बतलाई जाय।

लीलादिकपद

"बहसत, निदरत, हँसत अरु, छबि अनुहरत बखानि।
शत्रु मित्र अरु होड़कर, लीलादिकपद जानि॥"

भावार्थ—जहाँ अमर्ष-विमर्ष, निन्दा, हास्य और सौंदर्यादि में शत्रु-मित्र वत् होड़ (शर्त) अंकित की जाय, उसे लीलादिक पद कहते हैं।

ललितोपमा का उदाहरण

(१) **"उत श्याम घटा, इत हैं अलकैं, बकपाँति उतै, इत मोती-लरी।**
उत दामिनी, दंत चमंक इतै, उत चाप इतै भ्र-बङ्क धरी॥
उत चातक तो पिउ पिउ रहै, बिसरै न इते पिउ एक घरी।
उत बूँद अखण्ड, इतै अँसुवा, बरस-बिरहिन तें होड़ परी॥"

(१) **"आजु सखि हौं सुनति हौं, पौ फाटत पिय गौन।**
पौ में हिय में होड़ है, पहिले फाटत कौन॥"

(६) *अनन्वय*

जहाँ उपमा के योग्य उपमान न मिलने पर उपमेय को ही उपमान बना दिया जाय, वहाँ अनन्वय अलङ्कार होता है। यथा—

राम से राम सिया सी सिया।"

समा०—यहाँ उपमेय 'राम' और 'सिया' को ही 'राम' और 'सिया' उपमान बना दिया है। अतः यहाँ अनन्वय अलंकार होगा।

(७) *गमनोपमा (रसनोपमा)*

जहाँ पूर्वकथित उपमेय क्रमशः उपमान होता चला जाय, वहाँ गमनोपमा या रसनोपमा होती है। यथा—

"अहिंसा से सुख, सुख से शान्ति, और शान्ति से मुक्ति होती है।"

समा०—यहाँ 'सुख' उपमान आगे चलकर 'शान्ति' का उपमेय और 'शान्ति' उपमान आगे चलकर 'मुक्ति' का उपमेय वन गया है। अतः यहाँ **रसनोपमालंकार** होगा।

निम्न उदाहरणों में भी यही अलंकार होगा :—

(१) **निर्ममत्वं विरागाय, वैराग्यात् योग संततिः।**
योगात् संजायते ज्ञानं, ज्ञानात् मुक्ति प्रजायते॥

(२) गति से प्रगति, प्रगति से पतन और पतन से नीचता आती है।

(३) मति से नति (नम्रता), नति से विनति; विनति से रति, रति से गति, गति से भगति और भगति से ईश्वर के दर्शन होते हैं।

(८) *प्रतीप*

'प्रतीप' का अर्थ होता है 'उल्टा'। अर्थात् जब प्रसिद्ध उपमेय को उलटकर उपमान बना दिया जाता है, तब **प्रतीपालङ्कार** होता है। यह ५ प्रकार का होता है।

(१) **प्रतीप**—जब उपमेय को उपमान बना दिया जाय, तब प्रथम प्रतीप होता है। यथा—

"पङ्कज शोभै चरन सम ।"

समा०—यहाँ उपमेय (चरण) को उपमान बना दिया गया है । अतः यहाँ **प्रथम प्रतीपालंकार** होगी ।

(२) **प्रतीप**—जब उपमान द्वारा उपमेय का अपमान किया जाता है, तब वहाँ द्वितीय प्रतीप होता है । यथा—

"गर्व करत क्यों गुणन का, ये तो हैं सब माँहि ।"

अर्थात् तू अपने गुणों पर क्या अभिमान करता है, ये तो सर्व सामान्य में भी उपलब्ध हैं ।

समा०—यहाँ गुणों (उपमान) द्वारा उपमेय (कोई व्यक्ति) का अपमान किया जा रहा है । अतः यहाँ **द्वितीय प्रतीपालङ्कार** होगा ।

(३) **प्रतीप**—जब उपमेय द्वारा उपमान का अपमान किया जाता है, तब वहाँ तृतीय प्रतीप होता है । यथा—

"जहँ राधा आनन उदित, निसि वासर सानन्द ।
तहाँ कहा अरविन्द है; कहाँ बापुरो चन्द ॥"

समा०—यहाँ 'आनन' (मुख) उपमेय द्वारा 'अरविन्द' (कमल) और 'चन्द्र' उपमान का अपमान कर दिया गया है । अतः यहाँ **तृतीय प्रतीपालंकार** होगा ।

(४) **प्रतीप**—जब उपमेय के आगे उपमान की अयोग्यता सिद्ध की जाती है, तब वहाँ चतुर्थ प्रतीप होता है । यथा—

"समता मराल ने नेक कभी कर पाई,
मंजु मंद मंद नंद-नन्दन के चाल की ।"

समा०—यहाँ 'नंद-नन्दन (श्रीकृष्ण) की चाल (उपमेय) की समता के लिये 'मराल' (हंस) उपमान को अयोग्य ठहराया गया है । अतः यहाँ **चतुर्थ प्रतीपालंकार** होगा ।

(५) **प्रतीप**—जब उपमेय को उपमान का भी कार्य कर सकने में समर्थ देख उपमान का अपमान कर दिया जाता है । तब वहाँ पंचम प्रतीप होता है । यथा—

"जग प्रकास तुव जस करै, वृथा भानु यह देख।"

समा०—यहाँ 'यश' उपमेय 'सूर्य' उपमान का भी कार्य कर सकने में समर्थ है, तस्मात् बेचारे 'सूर्य' का अपमान कर दिया गया है। अतः यहाँ **पंचम प्रतीपलंकार** होगा।

(९) व्यतिरेक

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ अधिकता दिखाई जाती है, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। यथा—

"साधु उच्च है शैल सम, किन्तु प्रकृति सुकुमार।"

समा०—यहाँ 'साधु' उपमेय में 'शैल' (पर्वत) उपमान से सौकमार्य गुण में अधिकता दिखाई गई है अतः यहाँ **व्यतिरेकालंकार** होगा।

(१०) अर्थान्तर न्यास

जहाँ कोई सामान्य बात कहकर किसी विशेष बात से समर्थन किया जाता है, या किसी विशेष बात का समर्थन कोई सामान्य बात कहकर किया जाता है; तब वहाँ **अर्थान्तर न्यास** अलंकार होता है। यथा—

(१) **"बड़े न हूजिये गुनतु निनु, बिरद बड़ाई पाय।**
कनक धतूरे सों कहत, गहनो गढ़्यो न जाय॥

(२) "शंकर ने कामदेव को जलाकर राख कर दिया। ठीक है, बड़े लोग क्या नहीं करते ?"

समा०—पहिले उदाहरण में सामान्य बात की समर्थन विशेष से और दूसरे उदाहरण में विशेष बात का समर्थन एक सामान्य बात कहकर किया गया है। अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलकार होगा।

(११) रूपक

जहाँ उपमेय और उपमान में पूर्ण समता दिखाई जाय, वहाँ रूपक अलंकार होता है। यथा—

"राधा रति ही है।"

समा०—यहाँ 'राधा' (उपमेय) और 'रति' (उपमान) में पूर्ण समता दिखाई गई अतः यहाँ रूपकालंकार होगा।

इसके २ भेद हैं—(१) अभेद रूपक और (२) तद्रूप रूपक।

(१) अभेदरूपक

जहाँ उपमेय में उपमान की भिन्नता रहित समता दिखाई जाये, वहाँ अभेद रूपक होता है। यथा—

"चरण कमल ही हैं।"

समा०—चरण (उपमेय) में कमल (उपमान) का भिन्नता रहित आरोप किया गया है। अतः यहाँ अभेद रूपक होगा।

इसके ३ भेद हैं—(१) सम, (२) अधिक (३) न्यून।

(१) **समाभेदरूपक**:—जब उपमेय और उपमान दोनों बराबर हों, वहाँ समाभेद रूपक होगा। यथा—

"नेत्र खंजन हैं।"

में उपमेय (नेत्र) और उपमान (खंजन) दोनों बराबर हैं। अतः यहाँ समाभेद रूपक होगा।......

(२) **अधिकाभेद रूपक**:—जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ अधिकता (विशेषता) दिखाई जाय, वहाँ अधिकाभेद रूपक होता है। यथा—"मुख कमल है परन्तु मुख में मिठास अधिक है।"

समा०—यहाँ उपमेय (मुख) में उपमान (कमल) से मिठास गुण के कारण विशेषता दिखाई गई है। अतः यहाँ **अधिकाभेद रूपक** होगा।

(३) **न्यूनाभेदरूपक**—जब उपमेय में उपमान से कुछ न्यूनता (छोटापन) दिखाया जाय, तब न्यूनाभेद रूपक होता है।

यथा—"पच्छिराज बिनु पच्छ को, बीर समीर कुमार।"

समा०—यहाँ उपमेय में उपमान से न्यूनता दिखलाई गई है। अतः यहाँ **न्यूनाभेनरूपक** होगा।

(२) तद्रूपरूपक

जहाँ उपमेय को उपमान से भिन्न रखकर उसी का रूप और उसी का कार्य करनेवाला कहा जाता है, वहाँ तद्रूपरूपक होता है। यथा—"मोहनदास गाँधी बीसवीं शताब्दि के ईसा थे।"

समा०—यहाँ 'गाँधी' (उपमेय) को 'ईसा' (उपमान) से भिन्न रखकर उसी के रूप व कार्य का आरोप किया गया है। अतः यहाँ तद्रूप रूपक होगा। इसके भी ३ भेद हैं—(१) सम, (२) अधिक और (३) न्यून।

(१) **समतद्रूप**—जब उपमेय और उपमान में भिन्नता रखते हुए भी, उन दोनों में समता बतलाई जाय, वहाँ समतद्रूप होता है।

यथा—"मुख दूसरा चन्द्रमा है।"

समा०—यहाँ मुख (उपमेय) और चन्द्रमा (उपमान) को 'दूसरा' शब्द के द्वारा भिन्न रखा गया है परन्तु साथ ही उन दोनों में समता भी दिखाई गई हैं। अतः यहाँ **समतद्रूपरूपक** होगा।

(२) **अधिकतद्रूप**—जब उपमेय में उपमान से अधिकता दिखाई जाती है, तब 'अधिक तद्रूप' होता है। यथा—

"मुख द्वितीय चन्द्रमा है परन्तु मुख निष्कलङ्क है।"

समा०—यहाँ उपमेय (मुख) में उपमान (चन्द्रमा) से (निष्कलंक गुण के कारण) अधिकता दिखलाई गई है। अतः यह तो हुआ अधिकत्व और 'द्वितीय' शब्द के द्वारा उपमेय को उपमान से भिन्न रखते हुए भी उसी के कार्य का करनेवाला कहा गया है, इससे हुआ तद्रूप।

अतः यहाँ अधिक तद्रूप होगा।

(३) **न्यूनतद्रूप**—जहाँ उपमेय में उपमान की अपेक्षा हीनता दिखाई जाय, वहाँ न्यूनतद्रूप होता है। यथा—

"मुख द्वितीय चन्द्रमा है परन्तु उसमें अमृत का अभाव है"।

समा०—यहाँ 'मुख' (उपमेय) में 'चन्द्रमा' (उपमान) की अपेक्षा अमृतत्व का अभाव बताकर 'मुख' (उपमेय) की हीनता प्रकट की गई है। अतः यहाँ न्यूनतद्रूप होगा।

रूपक के अन्य भेद

(१) **साङ्गरूपक (सावयव रूपक)**—जब एक वस्तु का सदृश वस्तु के अंगों में उपमान के भिन्न-भिन्न अंगों का आरोप होता है, तब वहाँ **सांगरूपक** होता है। यथा—

(१) "(प्रात प्रातकृत करि रघुराई ।)
तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥
सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी ।
माधव सरिस मीतु हितकारी ॥
चारि पदारथ भरा भण्डारू ।
पुन्य प्रदेश देश अति चारू ॥
छेत्रु अगम गढ़ गाढ़ सुहावा ।
सपेनेहु नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा ॥
सेन सकल तीरथ व्रत वर वीरा ।
कलुष अनीक दलन रणधीरा ॥
संगम सिंहासन सुठि सोहा ।
छत्र अषयवट मुनिमनु मोहा ॥
चँवर जमुन अरु गंग तरंगा ।
देखि होहि दुःख दारिद भंगा ॥"

(२) "निर्वासित थे राम, राज्य था कानन में भी ।
(सच ही हैं श्रीमान भोगते सुख बन में भी ॥)
चन्द्रातप था व्योम, तारका रत्न जड़े थे ।
स्वच्छ दीप था सोम, प्रजा तरुपुञ्ज खड़े थे ॥"

(३) "विपति बीच वर्षा रितु चेरी ।
भुँइ भइ कुमति कैकेयी केरी ॥
पाइ कपट जल अंकुर जामा ।
वर दोउ दल दुख फल परिनामा ॥"

(२) निरङ्गरूपक (निरवयव रूपक)—इसमें केवल उपमेय और उपमान की अभेदता दिखाई जाती है, उसके अंग प्रत्यंगों का वर्णन नहीं किया जाता है। यथा —

"संसार डूबा जा रहा मद-मोह पारावार में" ।

समा०—यहाँ 'पारावार' (समुद्र) में निरवयवरूपक होगा क्योंकि यहाँ उसके अंगों का वर्णन नहीं किया गया है। केवल अभदेता दिखलाई गई है।

(३) **परम्परित रूपक**—जहाँ एक रूपक के द्वारा दूसरे रूपक की पुष्टि होती है। वहाँ परंपरितरूपक होता है। इसमें बगैर पहले रूपक के दूसरे का निर्वाह होना कठिन है।

यथा—"**दिनकर-कुल-कैरव-वन-चन्दू**"।

समा०—यहाँ 'दिनकर कुल' (सूर्य वंश) रूपक 'कैरव-वन-चन्दू' रूपक पर निर्भर है। अतः इसमें परम्परित रूपक होगा।

(१२) उत्प्रेक्षा

जहाँ उपमेय की उपमान में बलपूर्वक संभावना (कल्पना) की जाय, वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है। यथा—

"**मधुर वचन कहि कहि परितोषीं।**
जनु कुमुदनी कौमुदी पोषीं॥"

समा०—उत्प्रेक्षा मनु, जनु, जैसे, मानो, जानो, इव आदि शब्दों द्वारा प्रकट की जाती है।

विशेष द्रष्टव्य

जहाँ उत्प्रेक्षा उपर्युक्त वाचक शब्दों के द्वारा प्रकट की जाती है, वहाँ 'वाच्योत्प्रेक्षा' होती है परन्तु जहाँ इन वाचक शब्दों के बिना उत्प्रेक्षा हो, वहाँ—'प्रतीयमान' अथवा 'गम्या उत्प्रेक्षा' होती है।

इन दोनों के उदाहरण क्रमशः नीचे दिये जाते हैं—

(१) "**उदित कुमुदनी नाथ हुए प्राची में ऐसे।**
सुधाकलश रत्नाकर से उठता हो जैसे॥"
—(वाच्योत्प्रेक्षा)

(२) "**नित्य ही नहाता क्षीर सिन्धु में कलाधर है।**
सुन्दर तवानन की समता की इच्छा से॥"
—(प्रतीयमाना)

(३) "पुलिन पर सैन्य के तम्बू तने हैं।
वने मधुकोष ही मानो बने हैं"।
—(वाच्या)

(४) "एणीदृशः प्रबलतापभयादिवास्याः
श्वासानिलाः प्रतिमुहुः प्रसरन्ति दूरं।
बाष्पाम्बु वीचिषु निमज्जनकातरैव
निद्रा दृशोर्न सविधेपि पदं निधत्ते॥"
(सहृदयानन्द। ३।२०)

(५) छिप्यो छबीलो मुख लसै, नीले अंचल चीर।
मनो कलानिधि झलमले, कालिन्दी के नीर॥ (वाच्या)

उत्प्रेक्षा के ३ भेद

(१) **वस्तूत्प्रेक्षा**—जहाँ उत्प्रेक्षा करने का विषय (वस्तु) कहकर उस पर संभावना की जाय, वहाँ 'वस्तूत्प्रेक्षा' होती है। यथा—

**"अंगद कूदि गये जहाँ आसनगत लंकेश।
मनु मधुकर करहाट पर शोभित श्यामल वेश॥"**

समा०—यहाँ उत्प्रेक्षा करने की वस्तु (लंकेश) [उपमेय] कहके उसपर 'मधुकर' (उपमान) की संभावना की गई है। अतः यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा होगी।

(२) **हेतूत्प्रेक्षा**—जहाँ किसी वस्तु में संभावना करने के लिये जो हेतु (कारण) न हो, उसे भी हेतु मानकर संभावना की जाय; वहाँ हेतूत्प्रेक्षा होती। यथा—

**"तरनि-तनूजा-तट-तमाल-तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसनहित मनहु सुहाये॥"**

समा०—'तरुवर' का सीधा होना या वक्र होना स्वाभाविक है, यमुना का जल उसकी वक्रता का हेतु नहीं है, फिर भी उसे हेतु माना है। अतः यहाँ '**हेतूत्प्रेक्षा**' होगी।

(३) **फलोत्प्रेक्षा**—जहाँ जो फल नहीं है उसे भी फल मानकर संभावना की जाय, वहाँ 'फलोत्प्रेक्षा' होती है। यथा—

"धूरि धरत निज शीश पै, कहु 'रहीम' केहि काज ।
जेहि रज मुनि-पत्नि तरी, तेहि ढूँढत गजराज ॥"

समा०—हाथी का अपने शीस पर धूलि उछालने का कार्य संसार-सागर से तरने की इच्छा से नहीं होता है परन्तु फिर भी इस अफल को फल (मोक्ष प्राप्ति का) मानकर संभावना की गई है । एतदर्थ यहाँ 'फलोत्प्रेक्षा' होगी ।

(१३) स्मरण

जब उपमान के देखने पर उपमेय का स्मरण हो आता है, तब वहाँ 'स्मरण' अलङ्कार होता है । यथा—

"देते हैं दिखाई सब दृश्य अभिराम यहाँ,
सुषमा सभी को सुध स्याम की दिलाती है ।"

समा०—यहाँ श्रीकृष्ण के क्रीड़ास्थल को देखकर उन्हीं का स्मरण हो आया है । अतः यहाँ 'स्मरणालंकार' होगा ।

(१४) परिणाम

जब उपमान स्वयं किसी कार्य के करने में असमर्थ होने के कारण उपमेय की सहायता से उस कार्य के करने में समर्थ हो जाय, तब वहाँ '**परिणामालङ्कार**' होता है ।

यथा—"वह मदिराक्षी अपने चरण कमल से गमन करती है ।"

समा०—इस उदाहरण में मदिराक्षी के कमल (उपमान) गमन करने में असमर्थ है परन्तु चरण (उपमेय) की सहायता से वह उक्त कार्य के करने में समर्थ हो गया है । अतः यहाँ 'परिणामालंकार' होगा ।

(१४) उल्लेख

यह अलंकार दो प्रकार का होता है—

(१) **उल्लेख**—जब एक ही व्यक्ति को बहुत से व्यक्ति पृथक् पृथक् दृष्टि से देखें, तब प्रथम उल्लेखालंकार होता है । यथा—"श्रीकृष्ण वसुदेव के पुत्र, गोप-गोपियों के प्राण, कंस के परमशत्रु और व्रज के महाराज हैं ।"

समा०—यहाँ 'श्रीकृष्ण' नामक एक ही व्यक्ति को बहुत से व्यक्ति पुत्र, आदि समझ रहे हैं । अतः प्रथम उल्लेखालंकार होगा ।

(२) **उल्लेख** - जब एक व्यक्ति का बहुत से गुणों के कारण, बहुत से प्रकार से वर्णन हो, तब द्वितीय उल्लेखालंकार होता है।

यथा—"सोहन बुद्धि में बृहस्पति, तेज में सूर्य, गांभीर्य में रत्नाकर, और सरलता में 'राम' के सदृश है।"..............

समा०—यहाँ सोहन एक ही व्यक्ति विविध गुणों के कारण विविध प्रकार से वर्णित है। अतः यहाँ द्वितीय उल्लेखालंकार होगा।

(१५) भ्रान्तिमान्

जहाँ उपमेय में अत्यन्त साम्य के कारण उपमान का निश्चित भ्रम हो जाय, वहाँ 'भ्रान्तिमान्' अलङ्कार होता है। यथा—

"नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम को समझकर भ्रान्ति से।
देख उसको ही हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है॥"

समा०—यहाँ 'शुक' (तोते) को बेसर के मोती को देखकर अनार के बीज में निश्चित भ्रान्ति हो गई है। अतः यहाँ भ्रान्तिमान् अलङ्कार होगा।

(१६) सन्देह

जहाँ सत्य वा असत्य का निश्चय न होने से उपमेय का एक वा अनेक उपमानों के रूप में वर्णन किया जाय और यह संशय बना रहे कि यह अमुक वस्तु है या अमुक।

यह अलंकार कै, किधौं, या, अथवा आदि शब्दों से प्रकट किया जाता है। यथा—

"प्यारी खंड तीसरे रसीली रंग रावटी में,
तकि ताकी ओर छकि रह्यौ नंदनंद है।
'कालिदास' बीचिन दरीचिन है छलकत,
छबि की मरीचिन को झलक अमंद है॥
लोग देखि भरमैं कहा धौं है या घर में,
सुरंग मग्यो जगमगी जोतिन को कंद है।

लालन को जाल है कि ज्वालिनि की माल है कि,
चामीकर चपला कि रवि है कि चंद है ॥"

(२) "कहूँ तीर पर कमल अमल शोभित बहु भाँतिन।
कहूँ सैवालनि-मध्य कुमुदनी लगी रही पाँतिन ॥
मनु दृग धारी अनेक जमुन निरखत ब्रज शोभा।
कै उमँगे प्रिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा ॥
कै करिके कर बहु पीय कों टेरति निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥"

(१७) दीपक

जहाँ उपमेय और उपमान का एक ही धर्म कहा जाय, वहाँ दीपकालंकार होता है। यथा—

"स्त्री लावण्य से, मनुष्य विद्या से और राजा तेज से शोभा पाता है।"

समा०—यहाँ तीनों में (स्त्री, मनुष्य और राजा) धर्मैकता (शोभा पाता है।) दर्शाई गई है। अतः यहाँ दीपकालंकार होगा।

(१८) अतिशयोक्ति

जहाँ किसी की प्रशंसा के लिए, कोई बात बहुत बढ़ा चढ़ाकर कही जाय, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है। यथा—

"जोजन चारि मूँछ रह ठाढ़ी।"

समा०—यहाँ कुम्भकर्ण के मूँछों का वर्णन बहुत बढ़ा चढ़ाकर किया गया है। अतः यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होगा।

इसके ७ भेद हैं—

(१) रूपकातिशयोक्ति

जहाँ केवल उपमान के द्वारा उपमेय का ज्ञान कराया जाय, वहाँ रूपकातिशयोक्ति होती है। यथा—

"कनक-लता पर चंद्रमा धरे धनुष द्वै बान।"

(कनकलता = नायिका; चन्द्रमा = उसका मुख; धनुष = उसकी भौंहें; बान = नेत्र)

समा०—यहाँ केवल चन्द्रमादि उपमान के द्वारा ही उपमेय (नायिका) का बोध कराया गया है। अतः यहाँ **रूपकातिशयोक्ति** होगी।

(२) भेदकातिशयोक्ति

जहाँ उपमेय में उपमान से कुछ भेद न होने पर भी भेद का कथन किया जाय। यह भेद 'और ही दूसरा' 'निराला' 'यह और ही बात है', 'न्यारी' आदि शब्दों के द्वारा बतलाया जाता है। यथा—

"न्यारी रीति भूतल निहारी शिवराज की।"

समा०—यहाँ 'भूतल ने शिवराज की निराली ही रीति निहारी है। सो **भेदकातिशयोक्ति** है। इस अलंकार में भेद न रहने पर भी भेद दिखलाया जाता है।

(३) सम्बन्धातिशयोक्ति

जहाँ उपमेय और उपमान में वास्तव में सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध बताया जाय, वहाँ **सम्बन्धातिशयोक्ति** होती है। यथा—

"भैंस बियानी गाँजर में पड़वा रेंके फर्रुखाबाद।"

समा०—'गाँजर' और 'फर्रुखाबाद' में सैकड़ों मीलों का अन्तर है, अतः एक का दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं, प्रत्युत फिर भी इन दोनों का सम्बन्ध जोड़ा गया है। अतः यहाँ **सम्बन्धातिशयोक्ति** होगी।

(४) असंबंधातिशयोक्ति

जब किसी को योग्य होने पर भी अयोग्य बताया जाय अथवा संबंधित वस्तुओं का प्रतिषेध किया जाय। यथा—

"खर स्वान सुअर शृगाल मुख गनवेश अगनित को गिनै।
बहु जिनिस प्रेत पिसान जोगि जमात बरनत नहीं बनै॥"

समा०—'मुख' में गणना करने की शक्ति है। फिर भी यहाँ उसे वर्णन करने में असमर्थ ठहराया गया है। अतः यहाँ असंबंधातिशयोक्ति अलंकार होगा।

(५) अक्रमातिशयोक्ति

जहाँ कारण और कार्य एक साथ हो जायँ और उनके क्रम में कोई अन्तर न पड़े तो वहाँ अक्रमातिशयोक्ति होती है। यथा—

"उद्धत अपार तव दुंदुभी धुंकार साथ,
लंघै पारावार बालवृन्द रिपुगन के।"

समा०—यहाँ 'दुंदुभी धुंकार' (कारण) और 'लंघै पारावार बालवृंद रिपुगन के' (कार्य) एक साथ वर्णित है। अतः यहाँ **अक्रमातिशयोक्ति** होगी।

(६) *चञ्चलातिशयोक्ति*

जहाँ कारण के दर्शन या श्रवण करते ही कार्य सम्पन्न हो जाय, वहाँ चञ्चलातिशयोक्ति होगी ? यथा—

"पति-प्रस्थान श्रवण करते ही, मुँदरी कंकण हो गई।"

समा०—यहाँ पति-प्रस्थान (कारण) श्रवण करते ही अत्यन्त कृशता को प्राप्त होना (मुँदरी कंकण होना) [कार्य] सम्पन्न हो गया है ?

(७) *अत्यन्तातिशयोक्ति*

जहाँ कारण की चर्चा भी न हो और कार्य सम्पन्न हो जाय। यथा—

"हुइ राख की ढेरी वह, पीछे प्रकटी आगि"

समा०—उपर्युक्त उदाहरण में विचित्रता यह है कि 'राख की ढेरी पहले ही हो गई और पीछे उसमें आग लगी। लेकिन दुनियाँ में पहले कोई वस्तु जलती है, तत्पश्चात् राख की ढेरी होती है। सुतरां यह अन्त्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार होगा ?

"अतिशयोक्ति" के विषय में वक्रोक्तिवाद के आचार्य भामह यह अतिशयोक्ति कह गये हैं—

"सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारस्तया विना॥"

—अर्थात् काव्य में सर्वत्र 'वक्रोक्ति' (अतिशयोक्ति) ही चमत्कार है, यही अर्थ को चमत्कृत करती है। कवि ने भी अपनी रचनाओं में इसको लाने का प्रयत्न करना चाहिये, इस एक ही में समस्त अलंकारों की शोभा घनीभूत हो गई है, इसके अभाव में कोई अलंकार अलंकार नहीं कहा जा सकता।

इसी मत को समस्त आचार्यों ने एक स्वर से स्वीकृत किया है। परन्तु पं० नीलकण्ठ दीक्षित केवल इतना ही कहकर आगे बढ़ गये हैं—

"वक्रोक्तयो यत्र विभूषणानि, वाक्यार्थबाधः परमः प्रकर्षः ।
अर्थेषु बोध्येष्वभिधैव दोषः, सा काचिदन्या सरणिः कवीनाम् ॥"

—अर्थात् वक्रोक्ति ही जहाँ विभूषण है, वाच्यार्थ का बाध (शब्दों के प्रसिद्ध अर्थ का तिरस्कार) ही जहाँ परम प्रकर्ष है। अभिधाशक्ति से वाच्यार्थ (शब्दों के सीधे प्रसिद्ध अर्थ) का प्रकट करना ही जहाँ दोष है, ऐसा कवियों का यह मार्ग सबसे निराला है।

(१९) अत्युक्ति

जहाँ किसी की शूरता, उदारता, सुन्दरता, वियोगजनित कृशता आदि का वर्णन इतना बढ़ाचढ़ाकर किया जाय कि वह लोकसीमा को पार कर जाय। यथा—

(१) "शूरता—"सासु त्रास डर कहँ डर होइ।"
(२) उदारता—"याचक तेरे दान से भये कल्पतरु भूप।"
(३) सुन्दरता—"देख तेरो शशिमुख, शशि भी लजातो फिरै,
रूप-मधूकरी पाने, आयो रतिराज है।"
(४) कृशता—"करी बिरह ऐसी तऊ, गैल न छांड़तु नीच।
दीने हूँ चसमा चखनु, चाहै लखै न मीच॥"
(५) सौकुमार्य—"अंगानामनुलेपन स्मरणमप्यत्यन्त खेदावहं,
हंताधीरदृशः किमन्यदलकामोदोपि भारायते।"

[वह इतनी सुकुमार है कि शरीर पर अनुलेपन (चन्दन, केशर एवं कस्तूरी का लेप) का स्मरण भी उसे अत्यन्त खेदावह (थकावट पैदा करने वाला) मालूम देता है। उफ़, यहाँ तक कि उस धीरदृशा (चपलाक्षी) को दलकामोद (केशों की सुगंध) भी एक भार (वज़न) जान पड़ती है।]

(२०) *विभावना (प्रथम)*

जहाँ कारण के बिना ही कार्य का होना बतलाया जाय। यथा—

"बिनि करताल पखावज बाजै, अणहद की झनकार रे।
बिनि सुर राग छतीसों गावै, रोम रोम रँग सार रे॥

और

"आननरहित सकल रसभोगी । बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी ॥"

समा०—उपर्युक्त उदाहरणों में—कारण के अभाव में—कार्यों का होना बतलाया गया है । अतः यहाँ प्रथम विभावनालंकार होगा ?

विभावना द्वितीय

जहाँ कारण की समाप्ति के पूर्व ही कार्य की सिद्धि हो जाय । यथा—

"नगर निकट बरात सुनि आई । पुर खरभर सोभा अधिकाई ।"

समा०—यहाँ बरात को नगर निकट आने पर (आने का कार्य अपूर्ण रहने पर भी) नगर में संचलन (कार्य) होने लगा है । अतः यहाँ द्वितीय विभावनालंकार होगा ।

विभावना तृतीय

जहाँ कारण के लिए प्रतिबन्ध होने पर भी कार्य की सिद्धि दिखाई जाय ।

यथा—**"ग्राम ग्राम धाम धाम में है घनश्याम यहाँ,**
किन्तु वे छिपे हैं मंजुमानस दुकूल में ।"

समा०—घनश्याम मंजु मानस दुकूल में छिपे हैं (यह प्रतिबन्ध होने पर भी) फिर भी उनकी उपस्थिति का कार्य ग्राम-ग्राम और धाम-धाम में बतलाया गया है । अतः यहाँ तृतीय विभावनालंकार होगा ।

विभावना चतुर्थ

जहाँ जो किसी वस्तु का कारण न हो उससे भी कार्य की सिद्धि दिखाई जाय ।

यथा—**"हंसा चलेउ काग की चाल ।"**

और

"कागा अबै बोलत सुन्यौ कोकिल की मधु बानि ।"

समा०—यहाँ 'हंस' काग (कौआ) की चाल चलने का हेतु नहीं है और 'कागा' कोकिल की मधुवाणी का हेतु नहीं है फिर भी अहेतु से ही कार्य की सिद्धि दिखाई गई है । अतः यहाँ चतुर्थ विभावनालंकार होगा ।

विभावना पंचम

जब कारण के विरुद्ध कार्य की उत्पत्ति हो । यथा—

(१) **"पौन सौं जागत आगि सुनि ही पै, पानी सौं लागत आजु मैं देखी ।"**

(१) **"शीतल चंद अगिन सम लागत ।"**

(२) **"पवन, पानि घनसार सजीवनि, दधिसुत-किरण-भानु भइँ भुंजैं ।"**

समा०—उपर्युक्त उदाहरणों में कारण के विरुद्ध कार्योत्पत्ति कराई गई है । अतः यहाँ पञ्चम विभावनालंकार होगा ?

विभावना षष्ठ

जहाँ कार्य से कारण की उत्पत्ति दिखाई जाय । यथा—

"निकसत ससिमुख सौं वचन रस-सागर सुखदैन ।"

समा०—वस्तुतः सागर (कारण) से शशि (कार्य) की उत्पत्ति हुई है, परन्तु यहाँ शशि (कार्य) से सागर (कारण) की उत्पत्ति दर्शाई गई है । अतः यहाँ षष्ठ विभावनालंकार होगा ।

(२१) अन्योन्य

जहाँ दो पदार्थों का आपस में एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित किया जाय, वहाँ यह अलंकार होता है । यथा—

"ससि बिनु सूनि रैन, रैन बिनु ससी सयानो ।
कुल सूनो बिनु पुत्र, पुत्र बिनु वंश विरानो ।।"

समा०—यहाँ पूर्वार्द्ध में शशि (चन्द्रमा) और रैन (रात्रि) में अन्योन्य (परस्पर) सम्बन्ध बतलाया गया है और उत्तरार्द्ध में कुल (वंश) और पुत्र में । अतः यहाँ 'अन्योन्य' अलंकार होगा ।

(२२) विशेषोक्ति

जब कारण के उपस्थित रहते हुए भी कार्य की उत्पत्ति न हो । यथा—

"रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेश ।
भार धरे संसार को, तउ कहावत शेष ।।"

में 'भार धरे संसार को' (कारण) उपस्थित है फिर भी 'तउ कहावत शेष' (कामोत्पत्ति) नहीं हुई है । अतः यहाँ विशेषोक्ति अलंकार होगा ?

(२३) सार

जहाँ पूर्वकथित वस्तुओं का उत्तरोत्तर उत्कर्षोपकर्ष (घटाव बढ़ाव) वर्णन किया जाय, वहाँ 'सार' अलंकार होता है। यथा—

"रहिमन वे नर मरचुके, जे कछु माँगन जाहिं।
उनसे पहले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं॥"

में क्रमशः अपकर्ष का वर्णन किया गया है। अतः यहाँ **'सार'** अलंकार होगा!

(२४) परिवृत्ति

जहाँ थोड़ी वस्तु देकर बहुत सी छीन ली जाय। यथा—

"राजकुमार ने राजा को विष देकर सारे साम्राज्य पर अपना अधिकार कर लिया।"

समा०—यहाँ थोड़ी वस्तु (विष) देकर अधिक वस्तु (साम्राज्य) का लेना कहा गया है। अतः यहाँ परिवृत्त्यलंकार होगा।

(२५) विशेष प्रथम

जहाँ आधेय का, बिना आधार के वर्णन हो, वहाँ प्रथम विशेष अलङ्कार होगा। यथा—

"दो योधा विकराल, शून्य में थे खड़े।"

समा०—यहाँ आधेय (योधा) का बिना आधार के शून्य में खड़े होना कहा गया है—! अतः यहाँ प्रथम विशेष होगा।

विशेष द्वितीय

जहाँ थोड़े आरम्भ से अधिक सिद्धि की जाय। यथा—

'महापापी अजामिल केवल हरिस्मरण करने के कारण संसार-सागर से पार हो गया।"

समा०—यहाँ थोड़े से आरंभ (हरि स्मरण) से अधिक सिद्धि (संसार सागर से तरना) कहा गया है। अतः यहाँ 'द्वितीय विशेष' होगा।

विशेष तृतीय

जहाँ एक वस्तु का अस्तित्व (मौजूदगी) अनेक जगह बतलाया जाय।

यथा —**"अंकित ब्रजेश की छटा है सब ठौर यहाँ,**

लता-द्रुमवल्लियों और फूल फल में।"

समा०—यहाँ एक ही वस्तु (ब्रजेश) का अस्तित्व अनेक जगह (सब ठौर लता द्रुमवल्लियों और फूल फल में) बतलाया गया है। अतः यहाँ तृतीय विशेषालंकार होगा।

(२६) *विकल्प*

जहाँ इस प्रकार से वर्णन किया जाय कि 'यह होगा या वह।', वहाँ विकल्प होता है।

सूचनाः—'सन्देह' में यह अनिश्चय रहता है कि वस्तुतः यह होगा या वह, परन्तु 'विकल्प' में इन दोनों में से एक वस्तु निश्चित रहती है। यथा—

"ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर।
कै जाँचै घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर॥

और

"साधु कहावन कठिन है, लम्बा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखे प्रेम-रस, गिरे तो चकनाचूर॥"

समा०—यहाँ 'के जाँचे घनश्याम सों, कै दुख सहै शरीर' और 'चढ़ै तो चाखे प्रेमरस, गिरे तो चकना चूर' में एक न एक बात अवश्य होने की है, यह निश्चय है। अतः यहाँ विकल्प अलंकार होगा।

(२७) *अनुगुण*

जहाँ किसी वस्तु की संगति से किसी वस्तु का गुण अधिक बढ़ जाय, वहाँ अनुगुणालंकार होता है। यथा—

"अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रवि चंद।"

समा०—यहाँ रवि और चन्द्र की संगति से **अमावस्या का** अँधेरा और अधिक बढ़ गया है।

(२८) अवज्ञा

जहाँ किसी के गुण अथवा दोष को दूसरी कोई वस्तु ग्रहण न करे, वहाँ अवज्ञालंकार होता है। यथा—

"जैसे निशिवासर कमल रहे पंक ही में,
पंकज कहावे पै न वाके ढिग पंक है।"

समा०—यहाँ कमल (पंकज) पंक (कीचड़) के गुण को ग्रहण नहीं कर रहा है। अतः यहाँ 'अवज्ञालंकार' होगा।

(२९) अनुज्ञा

जहाँ किसी उत्कृष्ट गुण के कारण दोष को भी गुण मान लिया जाय। यथा—

"बलिहारी वा दुःख की; पल पल राम रटाय।"

समा०—यहाँ 'दुःख' दोष को भी उत्कृष्ट गुण (हरि नाम स्मारक) के कारण गुण मान लिया गया है। अतः यहाँ 'अनुज्ञालंकार' होगा।

(३०) तद्गुण

जहाँ कोई वस्तु अपना गुण छोड़कर संगति की अन्य वस्तु का गुण ग्रहण करे, वहाँ 'तद्गुणालंकार' होता है? यथा—

"अधर धरत हरि कै परत, ओठ, डीठि पट ज्योति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष रँग होति॥"

समा०—अधर पर धरी हुए हरित बाँस की बाँसुरी ओष्ठ और पट-ज्योति के संसर्ग से इन्द्रधनुष के रंग को ग्रहण कर रही है।

इसी प्रकार—

"कदली, सीप, भुजंगमुख; स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिये तैसोई फल दीन॥"

(३१) अतद्गुण

जहाँ कोई वस्तु, दूसरी वस्तु की संगति से भी अपना गुण न छोड़े; वहाँ अतद्गुणालंकार होता है। यथा—

"कोयलो हो न उजरो, सौ मन साबुन खाय।"

समा०—यहाँ पर कोयले ने साबुन की संगति से भी अपना गुण (कालिमा) नहीं छोड़ा है ! इसके कुछ और उदाहरण देखिये—

(१) चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग ।
(२) मूर्ख न पंडित होय, पढ़ै चउ वेद पचीके ।
(३) प्याज न छाँडे बास, सुगंध की पुट दिये ते ।
(४) दुष्ट न तजत स्वभाव, साथ सज्जन के रहिके ।
नीम न छोड़े गंध, इत्र को साथ किये से ॥

(३२) यथासंख्या

जहाँ क्रमानुसार वस्तुएँ कहीं जायँ, वहाँ 'यथासंख्यालंकार' होता है। यथा—

"लहरति, चमकति चावसों, तुव तरवार अनूप ।
धाय डसति, चौंधति चखनु, नागिनी दामिनी रूप ॥"

समा०—यहाँ 'लहरति' चमकति, धाय डसति और चोंधति चखनु के ही क्रम से 'नागिनी' और 'दामिनी' कहा गया है ?

इसी प्रकार—

"जम-करि मुँह तरहरि पर्यो, इहि धरहरि चित लाउ ।
विषय-तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुन गाउ ॥"

(३३) भाविक

जहाँ भूतकाल (बीता हुआ समय) या भविष्यद्काल (आने वाला समय) का प्रत्यक्षवत् (वर्त्तमान काल जैसा) वर्णन किया जाय । यथा—

"अब भी मुकुन्द रहते हैं ब्रजभूमि ही में,
देखते यहाँ के दृश्य दृग फेर फेर के ।"

समा०—यहाँ भूतकालिक घटना का प्रत्यक्षवत् वर्णन किया गया है । अतः यहाँ 'भाविकालंकार' होगा ।

(३४) स्वभावोक्ति

जहाँ किसी पदार्थ के स्वभाव का हूबहू वर्णन किया जाय । यथा—

"नीच की ओर ढरै सरिता जिम, धूम बढ़ावत नींद की नाँई ।
चंचला ह्वै प्रकटै चपला जिम, अंध करै जिम धूम की नाँई ॥

तेज करे तिसना द्व ज्यों मद, ज्यों मद पोषित मूढ़ के साँई ।
ये करतूति करै कमला जग, डोलत ज्यों कुटला बिन साँई ॥"

समा०—उपर्युक्त उदाहरण में कमला (लक्ष्मी) का स्वाभाविक वर्णन किया गया है । अतः यहाँ 'स्वभावोक्ति' होगी ।

(३५) समासोक्ति

जहाँ प्रस्तुत के वर्णन में से अप्रस्तुत का वर्णन भी निकल आवे, वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है । यथा—

"तू साँचो द्विजराज है, तेरी कला प्रमान ।
तो पे शिव किरपा करी, जानत सकल जहान ॥"

समा०—यहाँ 'द्विजराज' (भूषण, चन्द्रमा) कला (काव्य कला, चन्द्र-कला) और 'शिव' (शिवाजी, शंकर) शब्द श्लिष्ट होने से प्रस्तुत वर्णन (चन्द्रमा का) में से अप्रस्तुत वर्णन (भूषण कवि का) भी निकल आया है । अतः यहाँ 'समासोक्ति' अलंकार होगा ?

इसके और भी उदाहरण देखिये—

(१) **मंगल बिन्दु सुरंग, सखि मुख केसर आड़ गुरु ।**
इक नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगत ॥

(२) **सनि कज्जल चख झख लगनि, उपज्यो सुदिन सनेह ।**
क्यों न नृपति ह्वै भोगवे, लहि सुदेस सब देह ॥

(३) **कुमुदनीहि प्रमुदित भई, साँझ कलानिधि जोय ।**

(४) **तप्यौ आँच अति बिरह की, रह्यौ प्रेमरस भींजि ॥**
नैनन के मग जल बहे, हियौ पसीजि पसीजि ॥

(३६) अन्योक्ति (गूढ़ोक्ति)

जहाँ अप्रस्तुत (उपमान) के वर्णन द्वारा प्रस्तुत (उपमेय) का बोध कराया जाय । इसमें जिसके विषय में कहना होता है, उसके विषय में स्पष्ट न कहकर दूसरे के द्वारा कहलाया जाता है । यथा—

"स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देख विहंग विचार ।
बाज ! पराये पानि पर, तू पंछी हि न मार ॥

समा०—यहाँ दुष्ट स्वामी के इशारे पर अनर्थ करने वाले सेवक को अन्योक्ति द्वारा उपदेश दिया गया है, किन्तु यह स्पष्ट न कह कर दूसरे के द्वारा कहलवाया गया है।

इसी प्रकार और भी उदाहरण देखिये—

(१) **दस दिन आदरु पाइके, करले आपु बखान।**
जौ लगि काग सराध पख, तौ लगि तो सनमान॥

(२) **नहीं पराग नहीं मधुरमधु, नहीं विकास इहीं काल।**
अलि कलि ही तैं बँध्यो, आगे कौन हवाल॥

(३) **को छूट्यौ इहिं जाल परि, कत कुरंग अकुलाय।**
ज्यौं-ज्यौं सुरझ भज्यौ चहै, त्यों त्यों उरझो जाय॥

(४) **नहिं पावस ऋतुराज यह, तज तरुवर मति भूल।**
अपत भजे बिन पाय है, क्यों नव दल फल-फूल॥

(५) **मरत प्यास पिंजरा पर्‌यौ, सुआ समय के फेर।**
आदर दै दै बोलियतु, बायस बलि की बेर॥

(३७) लोकोक्ति

जहाँ किसी उक्ति में लोकोक्ति (कहावत) का प्रयोग किया जाय, वहाँ लोकोक्ति अलंकार होता है। यथा—

"**सबै कहत हरि बिछुरे, उर धर धीर।**
बौरी बांझ न जाने ब्यावर पीर॥"

समा०—यहाँ 'बाँझ न जाने ब्यावर पीर' लोकोक्ति का प्रयोग किया गया है। अतः यहाँ 'लोकोक्ति' अलङ्कार होगा।

(३८) छेकोक्ति

जहाँ अर्थान्तर गर्भित लोकोक्ति का प्रयोग किया जाय, वहाँ छेकोक्ति अलंकार होता है। यथा—

"**नेक उतै उठ बैठिये, कहा रहे गहि गेहु।**
छुटी जात नहँदी छनक, मँहदी सूखन देहु॥"

समा०—यहाँ 'नेक उतै उठ बैठिये, कहा रहे गहि गेहु' लोकोक्ति को बड़ी चतुरता से प्रयोग किया गया है—नायिका नायक से कह रही है कि 'क्यों' मकान के पीछे पड़े हो ? जरा बाहर घूम फिर आओ, तब मेंहदी सूखेगी।

इसमें यह ध्वनि निकलती है कि 'सच्चे प्रेमी अपने प्रेयसि के घर धन्ना देकर नहीं बैठ जाते हैं जैसे कि तुम। अतः यहाँ 'छेकोक्ति' अलंकार होगा।

(३६) विचित्र

जहाँ फल (अभिप्रेत फल) की ईच्छा के विरुद्ध प्रयत्न किया जाय। यथा—

"मरिबे को साहस कियौ; बढ़ी बिरह की पीर।
दौरत है समुहै ससि; सरसिज, सुरभि-समीर॥"

समा०—यहाँ अभिप्रेत फल (मरना) के विरुद्ध प्रयत्न (चन्द्रमा) के सामने दौड़ना आदि) किया जा रहा है। अतः यहाँ 'विचित्र' अलंकार होगा।

(४०) असंगति प्रथम

जहाँ कार्य और कारण पृथक्-पृथक् स्थान पर वर्णित हो। यथा—

"दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति॥"

समा०— उपर्युक्त उदाहरण में 'आँख उलझती है तो टूटता कुटुम्ब है और प्रीति चतुर के चित्त में जुड़ती है तो गाँठ दुर्जन के हृदय में पड़ती है।' यह प्रथम असंगति का उदाहरण हुआ।

असंगति द्वितीय

जहाँ समीचीन स्थान में करने योग्य कार्य को किसी अन्य स्थान में होना कहा जाय, वहाँ द्वितीय असंगति अलंकार होता है। यथा—

"पलनि पीक, अंजनि अधर, धरे महावर भाल।
आजु मिली सु भली करी, भले बने हो लाल।

समा०—यहाँ नेत्रों में लगाया जाने वाला अंजन अधरों पर और

पांवों में लगाया जाने वाला महावर भाल पर लगाया जाना वर्णित है। अतः यहाँ द्वितीय असंगति अलंकार होगा।

असंगति तृतीय

जब किसी कार्य के करने को प्रस्तुत होने पर उसके विपरीत कार्य कर डाला जाय। यथा—

"शंकर आइ अमंगल कीनो।"

[शकर = मंगल कर्ता; अमंगल = बुरा]

समा०—यहाँ मंगलकर्त्ता शंकर के आने पर विपरीत कार्य की सिद्धि दिखलाइ गई है। अतः यहाँ तृतीय असंगति अलंकार होगा। इसी प्रकार—

१—"यों दल मलियत निरदइ, दइ कुसुम से गात।
कर धर देखो धरधरा, अजौं न उर को जात॥"
२—तू मोहन मन गड़ि रही, गाढ़ी गड़नि गुवालि।
उठै सदा नट साल लौं, सौतिन के उर सालि॥
३—विषं जलधरैः पीतं मूर्छिताः पथिकांगनाः।

(४१) परिसंख्या

जब किसी वस्तु को अन्य स्थानों से हटाकर किसी एक ही स्थान पर स्थापित किया जाय। यथा—

"हँसी में विषाद बसै, विद्या में विवाद बसै,
काया में मरण गुरु वर्त्तन में हीनता।
शुचि में गलानि बसै, प्राप्ति में हानि बसै,
जय में हारि सुन्दरता में छबि छीनता॥
रोग बसै भोग में, संयोग में वियोग बसै,
गुण में गरब बसै सेवा माँहि दीनता" ॥१॥

समा०—यहाँ 'विषाद' एवं 'विवाद' आदि की प्राप्ति अन्यत्र न दिखा कर केवल 'हँसी' एवं 'विद्या' आदि में दिखलाई गई है। अतः यहाँ 'परिसंख्या' अलंकार होगा।

इसी प्रकार और उदाहरण देखिये—

१—नूतन ही में अधोगति पाइये।

२—जालरन्ध्र मग अगिनि को, कछु उजास सो पाइ।
पीठ दिये जग सों रहै, दीठि झरोखा लाइ।

(४२) लेश

जहाँ गुण में दोष और दोष में गुण की कल्पना की जाय, वहाँ लेश अलंकार होता है। यथा—

"मरन भलौ बरु विरह तें, यह विचार चितजोय।
मरन छूटे दुख एक कौ, बिरह दुहूँ दुख होय॥"

समा०—यहाँ मरण (मृत्यु) एक दोष है परन्तु उसमें भी गुण (मरने से सब दुःख दूर हो जाते हैं) की कल्पना की गई है।

(४३) हेतु

जहाँ कारण और कार्य दोनों एक संग रहैं या दोनों का एक साथ वर्णन किया जाय, वहाँ हेत्वलंकार होता है। यथा—

"ऊँची चितै सराहियत, गिरह कबूतर लेत।
दृग झलकित मुलकित वदन, तन पुलकित कहि देत॥"

समा०—यहाँ कारण (नायक के उड़ते हुये गिरहबाज कबूतर) और कार्य (आंखें भरिआना, प्रसन्न होना और पुलकित होना) दोनों का एक साथ बर्णन किया गया है। अतः यहाँ हेत्वअलंकार होगा।

(४४) काव्यलिंग

कहे हुए अर्थ को युक्ति द्वारा समर्थन करने को काव्यलिंग कहते हैं। यथा—

"नैकु हँसौही बानि तजि, लख्यौ परतु मुख नीठि।
चौका चमकनि चौंधि मैं, परति चौंधि-सी दीठि॥"

समा०—यहाँ "नैकु हँसौही बानि तजि लख्यौ परतु मुख नीठि'—का समर्थन "चौका चमकनि चौंधि मैं, परति चौंधिसी दीठि" —युक्ति द्वारा किया गया है। अतः यहाँ काव्यलिंग अलंकार होगा।

(४५) काव्यार्थापत्ति

जहाँ 'जब वह हो गया तो यह क्या है ?' कहकर वर्णन किया जाता है। वहाँ काव्यार्थापत्ति अलंकार होता है। यथा—

"धैर्य पिनाकपाणि हर का भी, कहिये स्खलित करूँ देवार्थ,
और धनुष धरने वाले सब, मेरे सन्मुख तुच्छ पदार्थ।"

समा०—यहाँ कामदेव इन्द्र से कह रहा है कि 'मैं देवार्थ पिनाकपाणि हर का भी धैर्य खलित कर सकता हूँ तब और धनुष धरने वाले मेरे सामने क्या चीज है। इस प्रकार..................

"जब मेघनाद ने इन्द्र को जीत लिया है तब देवताओं के जीतने का क्या कहना।"

(४६) उदाहरण

जब दो वाक्यों में साधारण धर्म की भिन्नता सहित, वाचक शब्दों के द्वारा समानता दिखलाई जाती है, तब उदाहरण अलंकार होता है। यथा—

"बूँद अघात सहैं गिरि कैसे। (प्रथम वाक्य)
खल के वचन संत सह जैसे॥" (द्वितीय वाक्य)

समा०— यहाँ दोनों वाक्यों में—साधारण धर्म (सहनशीलता) की भिन्नता सहित—(कैसे, जैसे) वाचक शब्दों द्वारा सादृश्य प्रकट किया गया है!

विशेष—'दृष्टान्त' में वाचक शब्द नहीं रहते, किन्तु 'उदाहरण' में वाचक शब्दों का रहना नितान्त आवश्यक है!

उदाहरण अलंकार के और उदाहरण

(१) रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखिया निरखि, आँखिन को सुख होत॥"

(२) ज्यों चौरासी लाख में मानुष देह।
त्योंहि दुर्लभ जग में, सहज सनेह॥

(३) तेरा साँई तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिर फिर ढूँढ़ै घास॥

(४) बुरो बुराई जो तजै सो चित खरो डरातु।
ज्यों निकलंकु मयंकु लखि, गनैं लोग उतपातु॥

(४७) दृष्टान्त

जहाँ उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य तथा उनके धर्मों में (वैषम्य होते हुए भी) बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव (भाव-साम्य) हो।

उद्भेद :—इस अलंकार में—प्रथम वाक्य में—कोई बात कही जाती है और दूसरे वाक्य में उससे मिलती जुलती कोई दूसरी बात कही जाती है, परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उन दोनों वाक्यों की समता किसी साधारण धर्म के कारण न हो और न ही वाचक शब्दों के द्वारा हो; नहीं तो क्रमशः 'प्रतिवस्तूपमा' और 'उदाहरण' अलंकार समझे जायँगे ? यथा—

"करगस सम दुरजन वचन; रहै संत जन टारि। (उपमेय वाक्य)
बिजुरी परत समुद्र में, कहा सकैगी जारि॥" उपमान वाक्य)

समा०—(१) यहाँ पहले वाक्य में 'संतों की सहनशीलता' के बारे में कहा गया है और दूसरे वाक्य में 'समुद्र की सहनशीलता' के विषय में (२) दोनों वाक्य मिलते-जुलते हैं। (३) इनमें कोई वाचक शब्द (ऐसे, जैसे, यों ज्यों आदि) भी प्रयुक्त नहीं हुए हैं और (४) दोनों वाक्यों के साधारण धर्म (टारि और जारि) भी भिन्न भिन्न हैं। अतः यहाँ दृष्टान्त अलंकार होगा। इसी प्रकार—

(१) छिमा बड़ेन को चाहिये, छोटन को उतपात।
का विष्णु को घटिगयो, जो भृगु मारी लात॥

(२) रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुःख प्रकट करेइ।
जाहि निकारो गेह तें, कस न भेद कहदेइ॥

(३) दुसह दुराज प्रजानु को, क्यों न बढ़ै दुखदंद।
अधिक अँधेरो जग करत, मिलि मावस-रवि-चंद॥

(४) निरखि रूप नँदलाल को, दृगन रुचै नहिं आन।
तजि पियूष कोऊ करत, कटु औषधि को पान ?

(५) जो बड़ेन को लघु कहें, नहि 'रहीम' घटि जाहिं।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं॥

(४८) प्रतिवस्तूपमा

जहाँ उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य समान हों तथा दोनों का एक ही धर्म दो समानार्थक शब्दों द्वारा कहा जाय। यथा—

"राम लखन सीता सहित, सोहत परम निकेत। (उपमेय वाक्य)
शोभत वासव असुरपुर, सची-जयन्त समेत॥" (उपमान वाक्य)

समा०—उपर्युक्त दोनों वाक्यों का एक ही धर्म (सुशोभित होना) 'सोहत' और 'शोभत' दो समानार्थक शब्दों द्वारा कहा गया है। अतः यहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार होगा।

(४९) निदर्शना प्रथम

जहाँ दो समान वाक्यार्थों का एक में आरोप किया जाय, वहाँ प्रथम निदर्शनालंकार होता है। यथा—

"शूर प्रचण्ड होते वैसे ही, जैसा है मार्तंड प्रखर।"

समा०—यहाँ 'प्रचण्ड शूर' और 'प्रखर मार्तंड' दो समान वाक्यार्थों का एक ही में आरोप किया गया है।

निदर्शना द्वितीय

जहाँ एक वस्तु में होने वाले गुण को दूसरी वस्तु में होना दिखलाया जाय, वहाँ द्वितीय निदर्शनालंकार होता है। यथा—

"यहै काम नाशिनी, कमिच्छा कलि में कहावे
यहै भव-भेदनी भवानी शंभुघरनी।
यहै रामरमणी सहजरूप सीता-सति
यहै देवी सुमति अनेक भाँति वरणी॥"

समा०—यहाँ 'सुमति देवी' उपमेय में कमिच्छा, भवानी और सीता-सति (उपमान) के गुणों का आरोप किया गया है।

निदर्शना तृतीय

जहाँ किसी पदार्थ की क्रिया से भले या बुरे फल का ज्ञान हो, तब तृतीय निदर्शनालंकार होता है। यथा—

"महाभारत के युद्ध से यह स्पष्ट हो गया कि सत्यवीर पाण्डवों के समक्ष अधर्मी कौरवों का बल कुछ नहीं है।"

समा०—यहाँ उपयुक्त क्रिया (युद्ध) से इस फल का ज्ञान होता है कि "अधर्मी सत्यवीर से नहीं लड़ सकता।"

(५०) विरोधाभास

जब दो विरोधी पदार्थों का संयोग एक साथ दिखाया जाता है, अथवा गुण, जाति, क्रियादि के संयोग से जहाँ परस्पर विरोध प्रदर्शित किया जाता है, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। यथा—

(१) तृण ते कुलिश, कुलिश तृण करई। (द्रव्य से द्रव्य का विरोध)

(२) या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै श्याम रंग, त्यों त्यों उज्वल होय॥

(गुण से गुण का विरोध)

समा०—उपर्युक्त उदाहरणों में क्रमशः द्रव्य से द्रव्य और गुण से गुण का विरोध वर्णित है। अतः यहाँ विरोधाभास अलंकार होगा।

(५१) उल्लास

जहाँ जब कोई किसी दूसरे के गुण अथवा अवगुण को धारण करता है, वहाँ 'उल्लासालंकार' होता है। यथा—

"चन्द्रमा लक्ष्मी का भाई है, इसीलिए तो वह चंचल (अस्थिर) है।"

या

"लक्ष्मी विष की बहिन है, इसीलिए तो वह लोगों को अचेत कर डालती है।"

समा०—यहाँ 'चन्द्रमा' और 'लक्ष्मी' क्रमशः लक्ष्मी और विष के गुणों को ग्रहण कर रहे हैं। अतः यहाँ उल्लास अलंकार होगा?

(५२) विषाद

जहाँ मनोवांछित फल के विरुद्ध ही फल की प्राप्ति हो। यथा—

"मैं रामू को मारने के लिए लट्ठ लाया था, परन्तु उससे मैं स्वयं ही पिटा गया।"

समा०—यहाँ मनोवांछित फल (रामू को पीटना) के विपरीत ही फल (स्वयं ही पिटा गया) की प्राप्ति दिखलाई गई है। अतः यहाँ विषादालंकार होगा।

(५३) संभावना

जहाँ यह कहकर वर्णन किया जाय कि 'ऐसा होता, तो ऐसा होता।' यथा—

"हे भगवान्! यदि तेरे गुणों का वर्णन स्वयं बृहस्पति भी करते तो संभव है कि वे भी तेरे गुणों का पार न पाते।"

समा०—यहाँ 'बृहस्पति' को वक्ता मानकर संभावना की गई है। अतः यहाँ संभावनालंकार होगा।

(५४) प्रौढ़ोक्ति

जो उत्कर्ष का कारण नहीं है, उसे भी उत्कर्ष का कारण मानकर जहाँ वर्णन किया जाता है, वहाँ प्रौढ़ोक्ति अलंकार होता है। यथा—

"चन्द्रमा का हमेशा रात्रि में विचरण करने के कारण उसमें कालिमा आगई है।"

समा०—जहाँ रात्रि की श्यामता के कारण चन्द्रमा में श्यामता नहीं आ सकती, परन्तु फिर भी उसे इस उत्कर्ष कारण माना गया है। अतः यहाँ प्रौढ़ोक्ति अलंकार होगा ?

(५५) विकस्वर

जहाँ विशेष बात का समर्थन एक सामान्य बात से और सामान्य बात का समर्थन एक विशेष बात से कर दिया जाता है—वहाँ विकस्वर अलंकार होता है। यथा—

"**महात्मा गांधी ने अहिंसा के अस्त्र से विदेशियों को मार भगाया** (विशेष वाक्य) **ठीक है—स्वतन्त्रता के प्रेमी ऐसे ही होते हैं,** (सामान्य वाक्य) **जैसे कि महाराणा प्रताप।**" (विशेष वाक्य)

समा०—यहाँ पहले एक विशेष बात कहकर उसका समर्थन एक सामान्य बात से तथा सामान्य बात का समर्थन पुनः एक विशेष बात द्वारा कराया गया है। अतः यहाँ विकस्वर अलंकार होगा ?

(५६) मिथ्याध्यवसिति

जहाँ किसी असत्य बात का समर्थन कोई असत्य बात कहकर कराया जाय। यथा—

"यदि कोई व्यक्ति आकाश को अपने कन्धों पर उठा ले तो गधों के भी सींग उगने लग जायँ ।"

समा०—आकाश स्वयं पोल है, उसे कोई व्यक्ति उठा नहीं सकता तथा गधों के सात जनम में भी सींग नहीं हो सकते। उपर्युक्त उदाहरण में असत्य बात का समर्थन असत्य बात कहकर किया गया है। अतः यहाँ 'मिथ्याध्यवसिति' अलंकार होगा।

(५७) ललित

जहाँ जो बात कहना हो उसे न कहकर उसका प्रतिबिम्ब ही कह दिया जाय। यथा—

"अब हवाई किले बाँधने की क्या आवश्यकता—शेर तो मोहन ने मार ही दिया है।"

समा०—यहाँ कहना तो यह था कि 'अब देवताओं की अर्चना करने की क्या आवश्यकता, मोहन तो परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया है।' परन्तु यह न कहकर केवल इसका प्रतिबिम्ब रूप कहा है।

(५८) प्रहर्षण प्रथम

जहाँ मनोवांछित फल की प्राप्ति बिना ही परिश्रम के हो जाय। यथा—

"मुझे जिस बात की चिंता थी, वही बात हो गई।"

समा०—यहाँ बिना परिश्रम किये ही कार्य सफल हो गया है। अतः यहाँ प्रथम प्रहर्षण अलंकार होगा ?

प्रहर्षण द्वितीय

जहाँ बिना परिश्रम के अभिप्रेत फल से अधिक की प्राप्ति हो जाय। यथा—

"कल रात्रि को जिस व्यक्ति को ५००) की आवश्यकता थी, उसे बड़ी फजर कहीं से ६००) की प्राप्ति हो गई।"

समा०—यहाँ बिना परिश्रम किये ही ईच्छित फल (५०० रु० पाना) से अधिक की प्राप्ति हो गई है। अतः यहाँ द्वितीय प्रहर्षण अलंकार होगा !

प्रहर्षण तृतीय

जहाँ जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए उद्योग किया जा रहा हो, वहाँ उसी वस्तु की प्राप्ति हो जाने पर तृतीय प्रहर्षण अलंकार होता है। यथा—

"धनोपार्जन के हेतु जो व्यक्ति कल परदेश के लिए रवाना हो गया था। उसे आज रास्ते में ही किसी वृक्ष की कोटर में रखे हुए अमूल्य हीरों की प्राप्ति हो गई।"

समा०—यहाँ जिस वस्तु की प्राप्ति के हेतु यत्न किया जा रहा था; उसी वस्तु की प्राप्ति का वर्णन किया गया है!

(५६) मुद्रा

जहाँ प्रस्तुत अर्थ के कथन करने वाले शब्दों से दूसरा अर्थ भी निकलता हो, वहाँ मुद्रालंकार होता है। यथा—

"हे वाहक! तू अपने विमान पर चढ़कर नायकविग्रह का संदेशा शीघ्रातिशीघ्र मुझे लाकर कह।"

[वाहक = सारथि, घुड़सवार], [विमान = रथ, अश्व]

[नायक विग्रह = सेनापति, नायक का शरीर]

समा०—यहाँ प्रस्तुत अर्थ के कथन करने वाले शब्दों से एक भिन्नार्थ भी निकल रहा है। अतः यहाँ मुद्रालंकार होगा।

(६०) रत्नावली

जहाँ प्रस्तुत अर्थ में क्रम से अन्य नाम भी प्रकट हों। यथा—

"हे प्राणेश! आप वाग्भट्ट, चक्रधर और विद्यावारिधि हैं।"

[वाग्भट्ट = सुवक्ता] [चक्रधर = राजचक्र को धारण करने वाला]

[विद्यावारिधि = दिग्गज विद्वान्]

समा०—यहाँ प्रस्तुत अर्थ में क्रम से वाग्भट्ट (बृहस्पति), चक्रधर (विष्णु) और विद्यावारिधि (गणेश) नाम भी प्रकट हो रहें हैं। अतः यहाँ रत्नावली अलंकार होगा?

(६१) उन्मीलित

जब दो पदार्थों के गुण एक से हों, परन्तु जब उनमें किसी कारणवश भेद मालूम कर लिया जा सके, तब **उन्मीलित अलंकार** होता है। यथा—

"मुख की कान्ति में चन्द्रमा की कान्ति ऐसी मिल गई है कि केवल समय भेद विज्ञान से मालूम किया जा सकता है कि यह मुख है और यह चन्द्रमा।"

समा०—यहाँ केवल समय भेद विद्वान से ही मुख और चन्द्रमा का पार्थक्य जाना जा रहा है। क्योंकि दिन में चन्द्रमा नहीं होता।) अतः यहाँ उन्मीलित अलंकार होगा!

(६२) मीलित

जहाँ वर्ण सादृश्य के कारण दो वस्तुओं का भेद न लक्षित किया जा सके, वहाँ मीलितालंकार होता है। यथा—

"हास्य की श्वेतता में चांदनी इस प्रकार मिल गई है कि दोनों में कोई भेद नहीं पड़ता!"

समा०—यहाँ नायिका के हास्य की श्वेतता में चाँदनी की श्वेतता इस प्रकार मिल गई है कि उन दोनों में भेद मालूम नहीं किया जा सकता। अतः यहाँ मीलितालंकार होगा।

सूचना :—हास्य का वर्ण श्वेत माना गया है।

(६३) सामान्य

जहाँ वर्ण सादृश्य के कारण दो विशेष पदार्थों में भेद न जाना जा सके। यथा—

"भाल पर बैठे हुए दो खञ्जन पक्षियों और नेत्रों में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता।

समा०—यहाँ खञ्जनपक्षी और नैत्र दो विशेष पदार्थ हैं इनमें वर्ण सादृश्य के कारण भेद नहीं प्रकट हो रहा है। अतः यहाँ सामान्यालंकार होगा।

(६४) पूर्वरूप प्रथम

जब कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तु के संयोग से प्राप्त किये हुए गुण को त्यागकर पुनः अपना रूप ग्रहण करले। यथा—

"यमुनाजी में कालियानाग के रहने के कारण, उनका समस्त जल विषाक्त हो गया था, परन्तु हे ब्रजेश ! तेरे यश-प्रताप से वह पुनः उज्ज्वल हो गया ।"

समा०—यहाँ कालियानाग के संसर्ग से यमुना का जल विषाक्त हो गया था, परन्तु वह श्रीकृष्ण के यश प्रताप से पुनः श्वेत हो गया है अर्थात् यमुना के जल ने अपना पूर्वरूप धारण कर लिया है।

पूर्वरूप द्वितीय

जहाँ किसी के गुण नष्ट हो जाने का कारण होने पर भी, किसी अन्य गुण के कारण उसका पूर्वरूप बना ही रहे। यथा—

"चन्द्रमा का कादम्बिनी में तिरोहित हो जाने पर भी उसकी मुख ज्योत्स्ना से प्रकाश बना ही रहा ।"

समा०—यहाँ चन्द्रमा के मेघाच्छादित हो जाने पर भी उस नायिका की मुख चंद्रिका से उसका पूर्वरूप बना ही हुआ है। अतः यहाँ द्वितीय पूर्वरूप अलंकार होगा।

(६५) व्याज स्तुति

जहाँ प्रकट में तो निन्दा सी मालूम हो, किन्तु वास्तव में की जा रही हो बड़ाई, वहाँ व्याजस्तुत्यलंकार होता है। यथा—

"का कहौं कहत न बनै, सुरसरि तेरी रीति ।
ताके तू मूँड़े चढ़ै, जो राखै कर प्रीति ।।"

समा०—यहाँ देखने में तो गंगा की निन्दा प्रतीत होती है, परन्तु वस्तुतः की जा रही है गंगा जी की बड़ाई।

(६६) व्याज निन्दा

जहाँ ऊपर से बड़ाई सी ज्ञात होती हो, परन्तु हो वस्तुतः निन्दा। यथा—

"राम साधु तुम साधु सुजाना । राममातु भलि, मैं पहिचाना ।।"

समा०—कैकयी राजा दशरथ से कह रही है कि 'राम कौशल्या और आप कैसी हैं—यह मैं जान गई हूँ। राम दुष्ट, आप छली और कौशल्या बहुत बुरी हैं।

'यहाँ देखने में तो सबकी बड़ाई सी प्रतीत होती है, परन्तु है वास्तव में निन्दा। अतः यहाँ व्याजनिन्दालंकार होगा। इसी प्रकार—

(१) **बड़े हुए तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।**
पंछी को छाया मिले, फल लागै नहिं दूर ॥

(२) **सेम्हर तू बड़ भागि है, कहा सराहौं जाय।**
पंछी को फल आस तुहि, निसदिन सेवहिं आय ॥

(६७) *दीपकावृत्ति प्रथम*

जहाँ शब्दों की आवृत्ति हो, अर्थ की नहीं, वहाँ प्रथम दीपक आवृत्ति अलंकार होता है। यथा—

"फिर फिर चित ही रहत, टुटी लाज की लाव।
अंग अंग छबि झौंर में, भयो भौंर की नाव ॥"

समा०—यहाँ 'फिर' और 'अंग' शब्द की आवृत्ति हुई है। अतः यहाँ प्रथम आवृत्ति दीपक अलंकार होगा।

दीपकावृत्ति द्वितीय

जहाँ शब्दों को छोड़कर केवल अर्थों की आवृत्ति हो यथा—

"लता पुहुप बनराजि, सदा रितुराज सुहावत।
हरी भरी डहडही वृक्षमाला, मन भावत ॥"

समा०—यहाँ 'सुहावत' और 'भावत' में अर्थावृत्ति है। अतः यहाँ द्वितीय आवृत्ति दीपक अलंकार होगा।

दीपकावृत्ति तृतीय

जहाँ शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति हो। यथा—

"**तन** सघन घटा **सा** श्याम प्यारा कहाँ है ?
वह अवधपुरी का **राम** प्यारा कहाँ है ?"

समा०—यहाँ 'घन' और 'घटा' में अर्थावृत्ति और 'प्यारा कहाँ है ?" में शब्दावृति हुई है। अतः यह तृतीय दीपकावृत्ति अलंकार होगा ?

(६८) *विधि*

जहाँ किसी विशेष अभिप्राय से किसी सिद्ध अर्थ को फिर से सिद्ध किया जाय, वहाँ 'विध्यलंकार' होता है। यथा—

"वही मनुष्य, मनुष्य है जो मनुष्य के लिये मरे।"

समा०—यहाँ 'मनुष्य' सिद्ध अर्थ है, लेकिन उसी को एक विशेष अभिप्राय (मनुष्य के लिए मरे) से पुनः सिद्ध किया गया है।

(६९) *निरुक्ति*

जब कोई विशेष जोड़ तोड़ करके किसी नाम का अन्य अर्थ कल्पित किया जाय, तब निरुक्ति अलंकार होता है। यथा—

"गायें सर्वदा ही गमन करती रहती हैं, इसी से शास्त्रकारों ने भी उसे 'गो' (गच्छतीति गोः) कहा है।"

समा०—यहाँ 'गो' शब्द का अर्थ 'गमन करना' ग्रहण किया गया है, जब कि 'गो' का शब्दार्थ ही वस्तुतः 'गाय' से निकल जाता है, किन्तु विशेष योग पाकर ही ऐसा किया गया है। अतः यहाँ निरुक्ति अलंकार होगा।

(७०) *विनोक्ति*

जहाँ 'बिना' बिनु, रहित, हीन, विहीन इत्यादि समानार्थी शब्दों द्वारा एक पदार्थ के बिना दूसरा पदार्थ शोभित अथवा अशोभित होता है, वहाँ विनोक्ति अलंकार होता है। यथा—

"जिय बिनु देह, नदी बिनु वारी। तैसेहिं नाथ पुरुष बिनु नारी॥"

समा०—यहाँ जीव के अभाव में देह, नारी के अभाव में पुरुष, और वारि के अभाव में नदी का अशोभित होना वर्णित है। इसके कुछ और उदाहरण देखिये :—

१—हरि बिनु बैल बिरानो ह्वै है।

२—शशि बिनु सूनी रैन, ज्ञान बिन हिरदौ सूनो।
कुल सूनो बिनु पुत्र, पत्र बिनु तरुवर सूनो॥
गज सूनो इकदंत, ललित बिनु सायर सूनो।
विप्र सुनो बिन वेद, वृक्ष बिनु पुहुप बिहूनो॥
हरिनाम भजन बिनु संत, अरु घटा बिनु सूनी दामिनी।
'बैताल' कहैं विक्रम सूनो, पति बिनु सूनी कामिनी॥१॥

३—भ्रमत फिरत तेलक के कपिञ्यों, गति बिनु रैन बिहै है।
कहत 'कबीर' रामनाम बिनु, मूँड़ धुनै पछितै है॥
४—घन घमण्ड गजरत है घोरा।
टका हीन कलपत मन मोरा॥
५—राम राम हा राम पिरीते। तुम बिनु जियत बहुत दिन बीते॥

(७१) सहोक्ति

जहाँ एक साथ ही दो वाक्यों (उपमेय और उपमान) का वर्णन सह, समेत, साथ, सहित, युत आदि वाचक शब्दों द्वारा आनंद को बढ़ाकर किया जाय। यथा—

"कामरूप सुन्दर तनु धारी। सहित समाज सोह बर नारी॥"

और इसी प्रकार :—

१—उद्धत अपार तव दुंदुभी धुंकार साथ
लंघै पारावार बालवृन्द रिपुगन के।
तैरे चतुरंग के तुरंगन रंगरेज, साथ ही उड़त रजपुञ्ज हैं परन के॥
दच्छिन के नाथ शिवराज तेरे हाथ चढ़ै,
धनुष के साथ गढ़ कोट दुरजन के।
'भूषण' असीसैं तोही करत कसीसैं पुनि,
बानन के साथ हरे प्रान तुरकन के॥"
२—पति-पयान के साथ ही चला चाहते प्राण।

(७२) परिकरांकुर

जहाँ जब विशेष्य साभिप्राय होता है, वहाँ परिकरांकुर अलंकार होता है। यथा—

"यमकरि मुँह तरहर पर्यो, यह धर हर चितलाय।
विषय तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुनगाय॥"

समा०—यहाँ 'नरहरि' विशेष्य साभिप्राय है, क्योंकि यमरूपी हाथी को मारने के लिए नरहरि (सिंह) ही समर्थ है। इसी प्रकार और उदाहरण देखियेः—

(१) कियौ सबै जग कामवश, जीते सबै अजेय।
कुसुमशरहिं शर धनुष कर, अगहन गहन न देय।

(२) **सूधे हू पिय के कहे, नेक न मानति** वाम ।
(३) **चतुर्णां पुरुषार्थानां दाता** देवश्चतुर्भुजः ।

(७३) परिकर

जब प्रस्तुत (विशेष) का वर्णन करने के लिए उसके साथ ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया जाय, जो साभिप्राय हों, तब परिकर अलंकार होता है। यथा—

"धैर्य पिनाकपाणि **हर का भी, कहिये स्खलित करूँ देवार्थ** ।"

समा०—यहाँ हर (महादेव) का विशेषण पिनाकपाणि साभिप्राय है। जिस पिनाक (धनुष) के द्वारा शंकर ने त्रिपुर आदि राक्षसों का मान मर्दन किया, ऐसे पराक्रमी शंकर के धैर्य को मैं (कामदेव) देवताओं के हेतु स्खलित (नष्ट) कर सकता हूँ।

(७४) विषम

जब ऐसी वस्तुओं का एक साथ रहना वर्णित हो, जिनका सम्बन्ध अनुचित हो।

अथवा

उद्यम करने पर भी बुरा फल हो, वहाँ विषमालंकार होता है। यथा—

"चैन न परत छिनु चम्पक तें चन्दन तें,
चन्द्रमा तें चाँदनी तें चौगुनी कै जरिये ।
'सुन्दर' उसीर चीर उजरेतें दूनी पीर,
कमल कपूर कोरि एक ठौर करिये ॥"

समा०—यहाँ चंपा, चन्दन, उसीर (खस) कमल, और कपूर आदि पदार्थ विरहिणी को दुःखद प्रतीत हो रहे हैं। अर्थात् यहाँ अच्छा उद्यम करने पर भी बुरे फल की प्राप्ति होने से विषमालंकार होगा।

इसी प्रकार—

"कहलाने एकत बसत, अहि-मयूर, मृग-बाघ ।"

में दो विरोधी पशुओं का एक साथ होना बतलाया गया है। अतः यहाँ विषमालंकार होगा।

(७५) गुम्फ (कारणमाला)

जहाँ कारण परस्पर माला में फूल की तरह गुथते चले जाते हैं, वहाँ गुम्फ या कारणमाला अलंकार होता है। यथा—

"चोरी करना पाप का, पाप हिंसा का और हिंसा नरक का कारण है।"

समा०—यहाँ परस्पर कारण वर्णित हैं। अतः यहाँ गुम्फालंकार होगा।

(७६) एकावली

जहाँ एक पद गृहितागृहीत रीति से ग्रहण किया जाय। यथा—

"उस नायिका के बाहु घुटने तक और घुटने एड़ी तक फैले हुए हैं।"

समा०—यहाँ 'बाहु' शब्द गृहीत हुआ और छोड़ा गया है। अतः यहाँ एकावली अलंकार होगा।

(७७) मालादीपक

जहाँ एक क्रिया या गुण अनेक पदार्थों में इस प्रकार आरोपित किये जायँ कि प्रत्येक पिछला गुण आगामी पदार्थ का उत्तेजक बनता जाय। यथा—

"गाय से दूध, दूध से दहीं, दहीं से नवतीत और नवतीत से घी की प्राप्ति होती है।"

समा०—यहाँ दूध आदि अनेक पदार्थों में 'प्राप्ति होती है' यह एक क्रिया आरोपित की गई है जो प्रत्येक अपने बाद वाले पदार्थ का उत्तेजक भी है। अतः यहाँ मालादीपक अलंकार होगा ?

विशेषः—इस अलंकार में 'दीपक' और 'रत्नावली' दोनों परस्पर तिलतन्दुलवत् मिले हुए होते हैं।

(७८) कारकदीपक

जहाँ एक ही वस्तु में क्रमपूर्वक अनेक भावों का होना दिखलाया जाय, वहाँ कारकदीपक अलंकार होता है। यथा—

"रिषिहिं देखि हरषै हियौ, राम देखि कुँभिलाय।
धनुष देखि डरपै महा, चिता चित्त डोलाय।"

समा०—यहाँ एक ही वस्तु (हृदय) में हर्षण, कुँभलावण, डरन इत्यादि भावों का होना क्रमशः वर्णित है। अतः यहाँ कारकदीपक अलंकार होगा।

(७९) समाधि

जहाँ अन्य हेतु के मिल जाने से प्रस्तुत कार्य और भी सुगम हो जाय। यथा—

"डाकुओं ने 'मोहिनी' ग्राम पर हमला करने का इरादा किया और चन्द्रमा बादलों में छिप गया।"

समा०—यहाँ 'चन्द्रमा के बादलों में छिप जाने के कारण डाकुओं का काम और भी सुगम हो गया है। अतः यहाँ समाध्यलंकार होगा ?

(८०) प्रत्यनीक

जहाँ प्रबल शत्रु को न जीत सकने के कारण उसके किसी संबंधी (नामराशी) से बैर ठान लिया जाता है, वहाँ प्रत्यनीक अलंकार होता है। यथा—

"पतंग (सूर्य) ने अपने अखण्ड प्रताप से चन्द्रमा और दीपक के प्रकाश को जीत लिया है। इसी से तो ये दोनों उसके सम्बन्धी (नाम साम्य होने से) पतंगों (विरहिणी का शरीर और पतिंगा) को जलाया करते हैं।"

समा०—यहाँ 'चन्द्रमा और दीपक' अपने प्रबल शत्रु 'सूर्य' को न जीत सकने के कारण उसके संबंधी पतंगों को दुःख पहुँचाने पर तुल गये हैं।

(८१) तुल्ययोगिता प्रथम

जहाँ शत्रु और मित्र दोनों के साथ समान व्यवहार हो। यथा—

"पसरि पत्र झंपहि पितहिं, सकुचि देत ससि सीत।
कहु रहीम कुल कमल के, को बैरी, को मीत॥"

समा०—यहाँ 'कमल' का समताभाव वर्णित है (न तो चन्द्रमा ही उसका शत्रु है और न ही सूर्य उसका शत्रु।) अतः यहाँ प्रथम तुल्ययोगिता अलंकार होगा।

तुल्ययोगिता द्वितीय

जहाँ बहुत से उपमेय या उपमानों में एक ही धर्म कहा जाय। यथा—

"हल्दी घाटी के शिलाखण्ड। ऐ दुर्ग ! सिंहगढ़ के प्रचण्ड॥
राणा-ताना कर घमण्ड। दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलन्त॥
वीरों का कैसा हो बसन्त॥१॥"

समा०—यहाँ 'हल्दी घाटी' और सिंहगढ़ दुर्ग' (उपमानों) में एक ही साधारण धर्म कहा गया है—"राणा ताना कर कर घमण्ड, दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत।" अतः यहाँ द्वितीय तुल्ययोगिता अलंकार होगा।

तुल्ययोगिता तृतीय

जहाँ अनेक वस्तुओं के उत्कृष्ट गुणों का आरोप एक ही वस्तु में किया जाय, वहाँ तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार होता है। यथा—

"तुम ही जगजीवन के पितु हो। तुम ही बिन कारण के हितु हो॥
तुम ही विघ्नविनाशन हो। तुम ही आनंद भासन हो॥१॥"

समा०—यहाँ एक ही व्यक्ति में शंकर, विष्णु, गणेश और देवर्षि के उत्कृष्ट गुणों का आरोप किया गया है।

(८२) *अप्रस्तुत प्रशंसा प्रथम*

जहाँ अप्रस्तुत (उपमान) का वर्णन इस ढंग से किया जाय कि उसमें प्रस्तुत (उपमेय) का भी ज्ञान हो जाय। यथा—

"ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर।"

समा०—यहाँ कवि ने अप्रस्तुत (चातक) का वर्णन इस ढंग से किया है कि उससे प्रस्तुत (कुलीन व्यक्ति) का भी लक्ष्य हो गया है। अतः यहाँ प्रथम अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार होगा।

अप्रस्तुत प्रशंसा (द्वितीय)

जहां अप्रस्तुत (उपमान) में प्रस्तुत (उपमेय) का भी अस्तित्व हो। यथा—

"धन्य आपका प्रण तथा, आत्म-त्याग आदर्श।"

या

"धन्य तुव वीरता।"

समा०—'आपका' या 'तुव' शब्द के द्वारा ही ज्ञात हो जाता है कि इस वर्णन में प्रस्तुत (उपमेय) का भी अंश है। क्योंकि उपर्युक्त वर्णन किसी उपमेय को ही लेकर किया गया है। अतः यहाँ द्वितीय अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार होगा।

(८३) प्रस्तुतांकुर

जहाँ प्रस्तुत (उपमेय) के वर्णन में किसी अन्य प्रस्तुत का अंकुर (बोध) हो, वहाँ प्रस्तुतांकुर अलंकार होता है। यथा—

"हे कमलिनी ! तू क्यों कुँभला रही है, वो देख तेरा रसिक आ रहा है।"

समा०—यहाँ किसी उपवन में कोई सखि व्यग्रनायिका से कह रही है कि 'वो देख तेरा रसिक आ रहा है।' यहाँ वर्णन तो कमलिनी का ही (क्योंकि उपवन में उन्हें प्रत्यक्ष कमलिनी कुँभलाइसी ज्ञात हो रही है।), परन्तु इसमें अन्य प्रस्तुत (नायिका) भी अपना अंकुर जमाये हुए हैं।

(८४) आक्षेप (निषेधाक्षेप)

जहाँ पहले किसी बात का निषेध किया जाय फिर उसी को दूसरी प्रकार से कह दिया जाय। यथा—

"मैं संदेशवाहक नहीं, परन्तु इतना बताये देता हूँ कि तुम्हारे मित्र की आज शादी हो रही है और तुम्हें भी वहाँ जाना है।"

समा०—यहाँ 'मैं संदेशवाहक नहीं हूँ' कहकर निषेध का केवल पुट दिया गया है, परन्तु उसी ने आगे संदेशवाहक का कार्य भी कर दिया है। अतः यहाँ निषेधाक्षेप अलंकार होगा?

उक्ताक्षेप

जहाँ पहले कोई बात कही जाय, उसी बात का आगे चलकर निषेध कर दिया जाय। यथा—

"हे कोकिल कण्ठे !! तू मुझे एक फड़कती हुई तान सुना दे, नहीं तो कोयल तो है ही।"

समा०—कोकिल कंठी से पहले जो निवेदन किया गया है उसी का आगे चलकर निषेध कर दिया गया है। (नहीं तो कोयल तो है ही।) अतः यहाँ उक्ताक्षेप अलंकार होगा।

व्यक्ताक्षेप

जहाँ किसी को केवल दिखाने के लिए किसी काम के करने की आज्ञा तो की जा रही हो, परन्तु वस्तुतः उसमें छिपा हो निषेध। यथा—

"हैसखि जिन पिय-गमन को, सगुन दियो ठहराइ।
ताहि तू बुलाइदै वह, प्राणदान ले जाइ॥"

समा०—यहाँ ऊपरी दिखावे के लिए अपने पति के विदेश गमन के हेतु शुभ मुहूर्त्त निकालने वाले मुहूर्त्तक को दान किया जा रहा है, परन्तु 'प्रान दान ले जाइ' से यह स्पष्ट है कि तुम यदि विदेश जाओगे तो मैं मर जाऊँगी! इस प्रकार इसमें निषेध छिपा हुआ है। अतः यहाँ व्यक्ताक्षेप अलंकार होगा।

(८५) *पर्याय (अनुक्रम)*

जब एक ही वस्तु का क्रमशः अनेक स्थानों में होना बतलाया जाय। यथा—
"हे हरि-पद-नख-वाहिनी गंगे!! तू अब तक ब्रह्माजी के कमण्डल, जह्नु की जंघा, महादेव के कपर्द और हिमाचल के हृदय में निवास करती रही है। अब तू मेरे हृदय में निवास कर।"

समा०—यहाँ गंगा का क्रमशः ब्रह्म-कमण्डल, शिवकपर्द और हिमाचल के हृदय में निवास वर्णित है। अतः यहाँ पर्यायालंकार होगा।

(८६) *पर्यायोक्ति प्रथम*

जहाँ किसी बात को स्पष्ट न कहकर घुमाफिरा कर कही जाती है, वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है। यथा—
"तुम रात में बहुत देर तक जागते रहे हो, जभी तुम्हें आलस्य सता रहा है।"
(अर्थात् तुम्हारे काम करने की इच्छा नहीं है, यह मैंने समझ लिया है।)

समा०—यहाँ कहना तो यह था कि 'आप बड़े आलसी हैं' परन्तु उसे घुमाफिरा कर व्यंग्य रूप में इस प्रकार कहा गया है "रात में अधिक देर तक जागते रहने के कारण तुम्हें आलस्य सता रहा है।"

पर्यायोक्ति द्वितीय

जहाँ किसी बहाने से चित्त को अच्छे लगने वाले कार्य की सिद्धि की जाय, वहाँ द्वितीय पर्यायोक्ति अलंकार होता है। यथा—

(किसी लड़के को रात्रि को 'सेकिन्ड शो' देखने की इच्छा हुई तो उसने अपने पिताजी से यों कहा)

"पिता जी आज मैं एक मित्र के यहाँ भगवान् सत्यनारायण की कथा श्रवण करने जाऊँगा, अतएव रात्रि में कुछ देर से आऊँगा।"

समा०—यहाँ लड़के ने हरि कथा का बहाना करते हुए चित्त को अच्छा लगनेवाला कार्य (सिनेमा देखना) साध लिया है। अतः यहाँ द्वितीय पर्यायोक्ति अलंकार होगा।

(८७) सम (प्रथम)

जहाँ दो योग्य पदार्थों की संगति दिखलाई जाय। यथा—

"एक तो करेला फिर नीम चढ़ा।"

समा०—यहाँ करेला और नीम दो योग्य पदार्थों (क्योंकि दोनों में गुणसाम्य है) की संगति कराई गई है। अतः यहाँ प्रथम समालंकार होगा।

सम द्वितीय

जहाँ कारण और कार्य को एकरूप कहा जाय। यथा—

"चन्द्रमा यदि विरहिणियों के प्राण लेता है तो यह कोई अनहोनी बात नहीं है क्योंकि वह विष का अनुज है।" (विष का स्वाभाविक गुण है कि प्राण लेना।)

समा०—यहाँ चन्द्रमा (कार्य) और विष (कारण) दोनों को एकरूप कहा गया है। अतः यहाँ द्वितीय समालंकार होगा।

सम तृतीय

जहाँ उद्योग करते ही अभिलषित फल की प्राप्ति हो जाय। यथा—

"राम ने मोक्षप्राप्ति के हेतु तपश्चरण किया और उसे प्राप्त किया।"

समा०—यहाँ उद्योग (तपश्चरण) करते ही अभिलषित फल (मोक्ष की प्राप्ति) पा लिया है। अतः यहाँ तृतीय समालंकार होगा ?

(८८) अधिक

जहाँ आधार से आधेय की अधिकता का वर्णन या आधेय से आधार की अधिकता का वर्णन किया जाय, वहाँ अधिक अलंकार होता है। यथा—

"जेहि बरबाजि राम असवारा। तेहि सारदा न बरनहि पारा।"

समा०—यहाँ बाजि (घोड़ा) आधेय का वर्णन करने के लिए बड़े से

बड़ा आधार (सारदा) भी असमर्थ है। अर्थात् आधार से आधेय की अधिकता दिखाई गई है।

(८९) अल्प

जहाँ छोटे से छोटे आधेय से भी छोटे आधार का वर्णन किया जाय। यथा—

"चिंटी-अण्ड-भण्ड में समायो ब्रह्माण्ड सब,
सपत समुद्रवारि बुद् में हिलोरे लेत।"

समा०—यहाँ 'चिंटी का अंडा' और पानी की एक बूँद छोटे से छोटे आधेय हैं, परन्तु इनसे भी छोटे ब्रह्माण्ड और सातों समुद्रों (आधारों) का यहाँ वर्णन किया गया है। अतः यहाँ अल्पालंकार होगा।

(९०) व्याघात प्रथम

जहाँ एक ही क्रिया से दो विरोधी कार्यों का होना वर्णित हो। यथा—

"जिस विष के पान करने से मनुष्य मर जाते हैं, उसी विष के द्वारा वैद्यगण गलितकुष्ट के रोगी को जीवनदान करते हैं।"

समा०—यहाँ 'विष' एक ही क्रिया है फिर भी उससे मरना और जिलाना दो परस्पर विरोधी कार्यों का होना बतलाया गया है। अतः यहाँ प्रथम व्याघातालंकार होगा।

व्याघात द्वितीय

जहाँ दो विरोधी क्रियाओं से एक कार्य का होना बतलाया जाय। यथा—

"वह नायिका कभी हँसकर और कभी रोकर अपने नायक को वश में करती है।"

समा०—यहाँ 'हँसना' और 'रोना' दो विरोधी क्रियाओं से नायक को वशीभूत किया गया है। अतः यहाँ द्वितीय व्याघातालंकार होगा?

(९१) समुच्चय प्रथम

जहाँ एक साथ अनेक भाव वर्णित हों। यथा—

"(जबतें कुँअर कान्ह रावरी कलानिधान,
कान परे वाके कहूँ सुजस कहानी सी।)
तबही तें 'देव' देखी देवता-सी हँसतिसी,
खीजतिसी, रीझतिसी, रूसती रिसानी सी ॥१॥"

समा०—हँसना, खीजना, रीझना इत्यादि अनेक भावों का एक साथ वर्णन किया गया है। अतः यहाँ प्रथम समुच्चय अलंकार होगा।

समुच्चय द्वितीय

जहाँ एक कार्य के करने के लिए अनेक कारण उपस्थित हों (यद्यपि उसके सम्पन्न करने में कोई एक ही समर्थ हो।) यथा—

"**कनक और कामिनी का उपभोग करने से दुर्गति होती है।**"

[कनक = स्वर्ण; धतूरा] और [कामिनी = स्त्री; शराब]

समा०—यहाँ दुर्गति के लिए कनक और कामिनी इन दो कारणों में से कोई एक कारण ही पर्याप्त है, फिर भी दोनों कहे गये हैं। अतः यहाँ द्वितीय समुच्चय अलंकार होगा।

(६२) चित्र

जहाँ एक ही वाक्य में प्रश्न और उत्तर दोनों तिलतन्दुलवत् मिले हों, वहाँ चित्रालंकार होता है। यथा—

"**इस भीषण कलिकाल में,** कोन मोक्ष ले जाय।"

समा०—यहाँ 'कोन मोक्ष ले जाय' प्रश्न का उत्तर भी 'को न मोक्ष ले जाय' है। अर्थात् (कोई मोक्ष ले जाने में समर्थ नहीं है।)

(६३) युक्ति

जहाँ कोई क्रिया करके उसके रहस्य को छिपाया जाय। यथा—

"**मोहन अखबार में अपने रौल नं० को देख रहा था, परन्तु हजार बार देखने पर भी उसे रौल नं० नहीं मिला। इसी बीच कहीं से उसके पिताजी भी आ गये तो मोहन ने झट युक्तिपूर्वक अखबार को छुपा लिया और अध्ययन में लग गया।**

समा०—यहाँ 'परीक्षा में अनुत्तीर्ण' रहस्य को अखबार छुपाकर छुपाया गया है। अतः यहाँ युक्ति अलंकार होगा।

(६४) विवृतोक्ति

जहाँ छिपा हुआ गुप्तभाव कवि के द्वारा प्रकट कर दिया जाय। यथा—

"सोहन ने अपने मित्र से कहा यह वही व्यक्ति है जिसने नोबेलपुरस्कार प्राप्त किया है।"

समा०—यहाँ रहस्य प्रकाशित कर दिया गया है। अतः यहाँ विवृतोक्ति अलंकार होगा।

(९५) पिहित

जहाँ किसी रहस्य को समझकर उसको किसी युक्ति द्वारा प्रकट कर दिया जाय, वहाँ पिहित अलंकार होता है। यथा—

"रात्रि में अति देर से आये हुए पुत्र को देखकर माता ने उसके नेत्रों पर मक्खन बाँध दिया।" (अर्थात् लगातार तीन घण्टे तक रजतपट की ओर देखने से तेरी आँखें दुखियाइ होंगी, इसलिए मक्खन की पट्टी बाँध ले।)

समा०—'यहाँ 'पुत्र की आँखों पर मक्खन बाँधकर माता ने 'सेकण्ड शो' देखने गया था—इस मर्म को प्रकाशित कर दिया है। अतः यहाँ पिहितालंकार होगा।

(९६) उदात्त

जहाँ किसी उपलक्षण के द्वारा किसी की अधिकता (बड़प्पन) का वर्णन किया जाय, वहाँ उदात्त अलंकार होता है। यथा—

"राम शब्द के केवल उच्चारण मात्र से असंख्य पाप दूर हो जाते हैं।"

समा०—यहाँ 'राम शब्द के उच्चारणमात्र से असंख्य पाप दूर हो जाते हैं'—यह उपलक्षण है, इससे भगवान् रामचन्द्रजी की अधिकता सूचित होती है। अतः यहाँ उदात्त अलंकार होगा।

(९७) गूढ़ोत्तर

जहाँ किसी गूढ़ भाव से युक्त उत्तर दिया जाय। यथा—

(१) **"कौन के सुत ? बालि के, वह कौन बालि ? न जानिये।**
काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये॥"

समा०—इसमें अंगद द्वारा रावण को गूढ़ोत्तर दिया गया है कि 'काँख चापि तुम्हें जो सागर सात न्हात बखानिये'—इसमें यह गूढ़ भाव है कि तुम मेरे से चीं चपड़ मत करना नहीं तो मैं भी तुम्हारा वही हाल कर दूँगा, जो बालि

ने आपका कर डाला था (क्योंकि वह बालि का पुत्र जो ठहरा, आखिर उसमें भी तो वही खून है ।)

(२) "है कहाँ वह वीर ? अंगद देवलोक बताइयो ।
क्यों गये ? रघुनाथ-बान-बिमान बैठि सिधाइयो ॥"

समा०—यहाँ रावण अंगद से प्रश्न कर रहा है कि 'वह वीर वालि आजकल कहाँ है ? तो अंगद ने देवलोक की ओर इशारा किया । तब रावण ने पुनः प्रश्न किया—क्यों गयो ? तो इस पर से अंगद ने यह गूढ़ोत्तर दिया है कि 'रघुनाथ बान बिमान बैठि सिधाइयो ।'

इसमें यह गूढ़ भाव है कि तुम जो सीताजी का हरण करके लाये हो, उन्हें सादर रामचन्द्र जी के पास पहुँचा दो नहीं तो बालि के समान तुम्हें भी 'रघुनाथ-बान-बिमान बैठि' देवलोक को सिधारना पड़ेगा (अर्थात् बाली के समान तुम्हारे भी प्राण व्यर्थ हो जायँगे ।)

(६८) सूक्ष्म

जहाँ किसी दूसरे के गुप्त मनोभाव को समझकर संकेत द्वारा कोई भाव प्रकट किया जाय, वहाँ सूक्ष्म अलंकार होता है । यथा—

"रात्रि के अवसर कोई नायिका अपनी माता के साथ देव-दर्शन के लिए जा रही थी । सामने से आते हुए नायक को देखकर उसने अपने मुखचन्द्र को घूँघट की ओट में कर लिया ।"

समा०—यहाँ नायक ने अपनी प्रियतमा से मिलने की अभिलाषा प्रकट की होगी । उसका निराकरण 'चन्द्रमुख को घूँघट की ओट में करके' इंगित (संकेत) कर दिया गया है (अर्थात् अभी मुलाकात न हो सकेगी क्योंकि साथ में माता जी भी हैं या सुबह मुलाकात होगी—जब चन्द्रमा डूब जायेगा ।)

यहाँ घूँघट 'मुलाकात न हो सकेगी' इस बात का द्योतक है और मुख 'चन्द्रमा' का ।

(६९) अपह्नुति (शुद्ध)

जहाँ किसी सत्य बात को छिपाकर उसकी जगह पर किसी असत्य बात का आरोप किया जाय वहाँ शुद्धापह्नुति होती है । यथा—

"यह स्त्री का मुख नहीं यह तो चन्द्रमा है।"

समा०—यहाँ वास्तविक उपमेय (मुख) को छिपा कर उसकी जगह पर असत्य बात (चन्द्रमा) का आरोप किया गया है।

हेत्वपह्नुति

जहाँ वास्तविक उपमेय के निषेध में कारण भी उपस्थित हो। यथा—

"ये नायिका की आँखों से बहते हुए आँसू नहीं हैं, आकाश से गिरते हुए ओस बिन्दु हैं, क्योंकि नायिका रो नहीं सकती इसलिए कि उसका नायक उसके पास ही है।"

समा०—यहाँ आँसुओं को ओस बिन्दु कहने के लिए कारण भी दिया गया है। इसी प्रकार—

"सायं नायमुदेति वासरमणिश्चन्द्रो न चण्डद्युतिर्दावाग्निः
कथमम्बरे किमशनिः स्वच्छान्तरिक्षे कथम्।
हन्तेदं निरणायि पांथरमणी-प्राणानिलस्याशया
धावद्घोरविभावरी - विषधरी - भोगस्थ-भीमो मणिः॥"

[अर्थात् सायंकाल को वासरमणि (सूर्य) नहीं उगता और चन्द्रमा चण्डद्युति (सूर्य के समान तेज किरणों वाला) नहीं होता इसलिए यह दावाग्नि है, परन्तु दावाग्नि तो जंगल में लगती है और यह तो आकाश है। आकाश में दावाग्नि नहीं हो सकती। फिर क्या यह अशनि (वज्र) है; नहीं यह अशनि भी नहीं है क्योंकि अशनिपात मेघ में होता है और अभी इस समय आकाश निरभ्र है। अतः यह सूर्य, चन्द्रमा, दावाग्नि और अशनि में से एक भी वस्तु नहीं है।

हंते (उफ!) मालूम हो गया यह तो पांथरमणियों (विरहिणियों) के प्राण अनिल (प्राणवायु) का अशन (भक्षण) करने के लिए दौड़ी आती घोर विभावरी (रात्रि) रूपी विषधरी (नागन) के भोगस्थ (शरीर पर) भीम (भयंकर) मणि है।]

समा०—उपर्युक्त उदाहरण में 'रात्रि' को साँपन और 'चन्द्रमा' को उसकी भोगस्थ (फन पर रखी हुई—लक्ष्यार्थ) मणि कहने में कारण भी दिए हैं। अतः यहाँ हेत्वपह्नुति अलंकार होगा।

पर्यस्त अपह्नुति

जहाँ उपमान के गुणों का आरोप उपमेय में किया जाय। यथा—

"विष सर्प में कहाँ है, वह तो दुर्जन की जिह्वा में होता है।"

समा०—यहाँ उपमान (सर्प) के गुण (विष) का आरोप उपमेय (दुर्जन की जिह्वा) में किया गया है। अतः यहाँ पर्यस्तापह्नुति अलंकार होता है।

भ्रान्त अपह्नुति

जब उपमेय में उपमान की शंका हो जाय और वह सत्य बात कहकर दूर की जाय। यथा—

"न सिर पर जटाएँ, बाल हैं किन्तु गूँथे।
गरल नहीं गले में, किन्तु कस्तूरिका है॥"

समा०—चोटी और कस्तूरिका में क्रमशः जटाओं और गरल (जहर) की भ्रान्ति हो गई थी, किन्तु वह सच्ची बात कहकर दूर की गई है। एक और उदाहरण देखिये :—

"एक समय तजि के सब सैन सिकार को आलमगीर सिधाए।
आवत है सरजा सम्हरौ इक ओर ते लोगन बोलि जनाए॥
"भूषण" भौ भ्रम औरंग के शिव भोंसिला भूप की धाक धुआए।
धाय कै 'सिंह' कह्यौ समुझाय, करोलिनि आय अचेत उठाए॥"

समा०—यहाँ औरंगजेब को 'आवत है सरजा (शेर और शिवाजी) सम्हरौ' में छत्रपति शिवाजी का भ्रम हो गया था, परन्तु वह सच्ची बात कहकर (कि शिवाजी नहीं महाराज शेर है वो तो) दूर किया गया है।

छेकापह्नुति

जहाँ उपमान की शंका करके उपमेय छिपाया जाय। यथा—

"वह आवे तब शादी होय, मीठे लागें वाके बोल।
क्यों सखि साजन! ना सखि, 'ढोल'॥"

समा०—यहाँ 'ढोल' उपमान की शंका करके उपमेय (साजन) को छिपाया गया है। अतः यहाँ छेकाह्नुति होगी।

कैतव अपह्नुति

जहाँ कैतव, मिस, छल, व्याज आदि शब्दों द्वारा सत्यवस्तु (उपमेय) का निषेध करके असत्य वस्तु (उपमान की स्थापना की जाय) यथा—

"ब्रह्माणं वेद निनद व्याजात्तुपारा-चल—
स्थान—स्थावरमीश्वरं सुरनदी—व्याजस्तथाकेशव—।
मप्यम्भोनिधि—शायिनं जलनिधि —ध्वानापदेशादहो
फूत्कुर्वन्ति धनंजयस्य च भिया, शब्दाः समुत्पीड़िता ॥"

—महाकवि धनंजय

अर्थात्—**धनंजय कवि के भय से समुत्पीड़ित होकर शब्द वेद ध्वनि के मिस ब्रह्मा के पास, गंगा के बहाने से कैलाशपर्वत पर रहनेवाले शंकर के पास और समुद्र के बहाने शेषशायी नारायण के पास जाकर अपना अपार दुःख प्रकट करते हैं।"**

समा०—यहाँ मिस', व्याज और बहाने आदि शब्दों द्वारा उपमेय (वेदध्वनि, गंगा और समुद्र) का निषेध करके ब्रह्मा, महेश और विष्णु (उपमानों) की स्थापना की गई है। अतः यहाँ कैतवापह्नुति अलंकार होगा।

(१००) व्याजोक्ति

किसी खुली बात वा दृष्टान्त को छिपाने के लिए कोई बहाने की बात कहना व्याजोक्ति है। यथा—

"किसी को दिन में नींद आ रही है, बार-बार झपकियाँ ले रहा है। वह उसको छिपाने के लिए कहता है कि कल रात्रि का देर तक जागरण करना पड़ा था, उसी का यह परिणाम है।"

समा०—यहाँ नींद लेने की क्रिया को छिपाने के लिए 'रात्रि-जागरण' का बहाना कर दिया है। अतः यहाँ व्याजोक्ति अलंकार होगा।

(१०१) असंभव

जब कोई ऐसी बात कही जाय जो असंभव सी जान पड़े यथा—

"गधे के सिर पर भी शृंग होते हैं, आकाश में भी पुष्प खिलते हैं और मनुष्य के भी हाथी के समान दो बड़े बड़े दाँत होते हैं।"

समा०—यहाँ उदाहरण में ऐसी बातें कही गई हैं, जिसमें एक भी संभव नहीं दिखती। अतः यहाँ असंभव अलंकार होगा।

(१०२) प्रतिषेध

जहाँ निषिद्ध वस्तु का पुनः निषेध किया जाय, वहाँ प्रतिषेध अलंकार होता है। यथा—

"लाँघे गिरि, दधि हनुमन्त, वह न जारिबो लंक।"

समा०—यहाँ 'लंकादहन' का अर्थ पहले ही निषिद्ध है। उसका फिर से निषेध इसलिए किया गया है कि लंका जलाने के अतिरिक्त पर्वतों और समुद्र को लाँघना अत्यन्त कठिन है। अतः यहाँ प्रतिषेध अलंकार होगा।

[उभयालंकार]

दो या दो से अधिक अलंकारों के मेल को उभयालंकार कहते हैं। चाहे वे दोनों शब्द अलंकार हों या अर्थ अलंकार अथवा एक शब्द अलंकार हो और दूसरा अर्थअलंकार। इसके २ भेद हैं—

(१) संसृष्टि और (२) संकर

[१] संसृष्टि उभयालंकारः—

उसे कहते हैं जहाँ दो अलंकार तिलतन्दुलवत् मिले हुए हों। यदि किसी पात्र में तिल और तन्दुल (चाँवल) दोनों मिला कर रख दिये जायँ तो भी तिल और चाँवल अलग-अलग दिखाई देंगे। उसी प्रकार इस संसृष्टि में भी दोनों अलंकार स्पष्टरूप से पहिचाने जा सकते हैं। यथा—

"समता मराल ने न नेकु कभी कर पाई,
मंजु मंद मंद नंदनंदन के चाल की।"

समा०—इसमें वृत्त्यनुप्रास (मंजु मंद मंद) पुनरुक्तिप्रकाश (मंद मंद) और छेकानुप्रास (नंद-नंदन) तीनों शब्द अलंकार तिलतन्दुलवत् पहिचाने जा रहे हैं। अतः यह 'संसृष्ट उभयालंकार का उदाहरण हुआ। इसके ३ भेद हैं—

(१) शब्दालंकार संसृष्टि

जहाँ दो या दो से अधिक शब्दालंकार एक ही छन्द में तिलतन्दुलवत् मिलें हों, वहाँ शब्दालंकार संसृष्टि होती है। यथा—

"कलकल रूप में है वंशी रव गूँज रहा,
जाके सुनो कलित कलिंदजा के कूल में।"

समा०—यहाँ छेकानुप्रास (कलकल) पुनरुक्ति प्रकाश (कलकल) और वृत्त्यनुप्रास (कलित कलिंदजा के कूल) तिलतदुलवत् मिले हुए हैं। ये तीनों शब्दालंकार है। इसी प्रकार—

(१) कण कण में **है व्याप्त दृगसुखकारी यहाँ,**
मंजु मनोहारी मूर्ति मंजुल मुरारी की।

(२) है गिरिराज गोपजन **का समाज वही,**
वही सब साजबाज आज **भी ललाम** हैं।

(३) **भजरे मन** नंदनंदन, **विपति विदार।**
गोपीजन मनरंजन **परम उदार॥**

(४) बंदहु बिघन बिनासन, रिधि सिधि **ईस।**
निर्मल बुद्धि प्रकासन, सिसु ससि सीस॥

(२) अर्थालंकार संसृष्टि

जहाँ दो या दो से अधिक अर्थालंकार पृथक् पृथक् प्रतीत हो। यथा—

"यमकरि मुँह तरहरि परयो, यह धर हरि चितलाय।
विषय तृषा परिहरि अजौं, नरहरि **के गुन गाय॥"**

समा०—यहाँ रूपक (यम-करि) परिकरांकुर (नृसिंह) और परिसंख्या अर्थ अलंकारों की संसृष्टि है!

(३) शब्दार्थालंकार संसृष्टि

जहाँ शब्द और अर्थ दोनों अलंकारों की संसृष्टि हुई हो, वहाँ शब्दार्थालंकार संसृष्टि उभयालंकार होता है। यथा—

तीज परब सौतिन सजे, भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे मुँह करी, वहै मरगजे चीर॥

समा०—इसमें आवृतिदीपक (मरगजे मरगजे) और लाटानुप्रास (सबै मरगजे मुँह करी, वहै मरगजे चीर) की संसृष्टि हुई है? आवृत्तिदीपक अर्थालंकार है और लाटानुप्रास (शब्दालंकार)।

इसी प्रकार—(१) **हेरि हिंडोरे गगन तें, परी परी सी टूटि।**

धरी धाय पिय बीच ही, करी खरी रस लूटि॥

(२) **खेलन सिखये अलि भये, चतुर अहेरी मार।**

काननचारी नैनमृग, नागर नरन सिकार॥

(३) **केस मुकुत सखि मरकत मनिमय होत।**

हाथ लेत पुनि मुकता करत उदोत॥

[२] संकर अलंकार :—

जहाँ दो या दो से अधिक अलंकार जलदुग्धवत् मिले हुए हों, वहाँ संकर उभय अलंकार होता है। जिस प्रकार दूध में जल मिला देने पर जल भी दूध का ही रूप धारण कर लेता है। उसी प्रकार 'संकर' में भी यह जानना कठिन होता है। ऐसे समय हंस के क्षीर नीर विवेक से काम लिया जाता है। यथा—

"तू साँचो द्विजरात है, तेरी कला प्रमान।

तो पे शिव किरपा करी, जानत सकल जहान॥"

[(द्विजराज = भूषण कवि; चन्द्रमा). (कला = काव्यकला, चंद्रकला)]

(शिव = छत्रपति शिवाजी; शंकरजी)

समा०—यहाँ उक्त उदाहरण में श्लेष, समासोक्ति और मुद्रालंकार जलदुग्धवत् मिले हुए हैं। अतः यहाँ संकर उभयालंकार होगा।

इसके ३ भेद होते हैं—(१) अंगांगी भाव, (२) संदेह संकर और (३) एकवाचकानुप्रवेश।

(१) अंगांगीभाव संकर

जहाँ दो अलंकार इस प्रकार से पड़े हों कि, उसमें से एक अंगी हो और दूसरा अंग।

इसको समझने के लिए 'वृक्षबीज न्याय' का आश्रय लेना पड़ता है। जिस प्रकार वृक्ष अंगी और बीज अंग होता है तथा साथ ही बीज वृक्ष की उत्पत्ति में और वृक्ष बीज की उत्पत्ति में सहायक होता है, उसी प्रकार 'अंगांगीभाव संकर' में भी दो अलंकारों में से एक अंगी और दूसरा अंग होता है तथा साथ ही वे एक दूसरे की उत्पत्ति में भी सहायक होते हैं। यथा—

"रावण सिर सरोज वनचारी। चलि रघुवीर शिलीमुख धारी॥"

समा०—उपर्युक्त उदाहरण में—'सिर-सरोज-में रूपक और 'शिलीमुख' में श्लेषालंकार है। शिलीमुख का अर्थ 'भ्रमर' होने से ही 'सिर-सरोज' का रूपक सार्थक हो सका है। अतः यहाँ अंग हुआ 'शिलीमुख' और अंगी हुआ 'सिर सरोज'। साथ ही ये दोनों परस्पर एक दूसरे के उपकारक भी हैं।

(२) संदेह संकर

जहाँ दो अलंकारों की स्थिति ऐसी हो कि दोनों में से किसी एक का निश्चय न हो सके और संदेह बना ही रहे। यथा—

"रहिमन कबहुँ बड़ेन के, नाहिं गर्व को लेश।
भार धरैं संसार को, तऊ कहावत शेष॥"

समा०—इस उदाहरण में 'दृष्टान्त' भी हो सकता है और 'विशेषोक्ति' भी। इससे यहाँ संदेह बना ही हुआ है।

इसी प्रकार :—

(१) कनक कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय।
यहि खाये बौरात है, वहि पाये बौराय॥
(२) तीन परब सौतिन सजै, भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजै मुँह करी, वहै मरगजे चीर॥

(३) एकवाचकानुप्रवेश संकर

जहाँ एक ही पद या वाक्यांश में एक से अधिक अलंकार पाये जायँ, वहाँ एकवाचकानुप्रवेश संकर होता है। यथा—

"मन में बसी है मूर्ति उसी मनमोहन की,
हिचकें भला वे कैसे रूपरस-पान में।"

समा०—यहाँ 'रूप-रस' में छेकानुप्रास, और रूपक अलंकार एक ही पद पर स्थित हैं। अतः यहाँ एकवाचकानुप्रवेश संकर होगा।

सूचना—बहुत से ग्रंथकारों ने 'रूप-रस' सुधा-सिन्धु, पदपंकज' जैसे पदों में उपमालंकार की भी कष्टकल्पना है, जो 'काव्यादर्श' के प्रणेता आचार्य दण्डी के मतानुसार सर्वथा अनुपयुक्त है। देखिये—

"उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते।
यथा बाहुलता, पाणि-पद्म, चरण-पल्लवः ॥" (काव्यादर्श)

—अर्थात् जहाँ उपमेय और उपमान में कोई भेद न लक्षित हो, ऐसी उपमा को ही 'रूपक' कहते हैं—यथा "बाहु-लता" "पाणि-पद्म" और "चरण-पल्लव।" वैसे ही "रूप-रस" "सुधा-सिन्धु" इत्यादि।

एकवाचकानुप्रवेश के कतिपय उदाहरण

(१) सुखद अतीत 'सुधा-सिन्धु' में समाते हैं।

(२) उमड़ रहा है प्रेम-पारावार मानस में,
ब्रजबनिताएँ कैसे बैठी रहें मान में ?

(३) जो प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद-पदम पखारन कहहू॥

(४) "यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात्॥"

८. दोष-दर्शन

काव्य में दोषों को वही स्थान दिया जाना चाहिये जो कि उसके गुणों को दिया जाता है। क्योंकि बिना दोषों के जाने तो यह जान सकना भी कठिन है कि 'ये गुण हैं'। जब किसी पदार्थ में दोष होंगे, तभी हम उसके दोषों को ध्यान में रखते हुए उसके गुणों का विवेचन कर सकेंगे, अन्यथा नहीं। गुण और दोष एक दूसरे के विपर्यय होते हुए भी परस्पर इतने संबंधित है कि जहाँ गुण होते हैं वहीं दोष भी अवश्य ही होते हैं। फिर भी इन दोषों का परिहार किया जाना आवश्यक है। क्योंकि दोषी व्यक्ति को सभी व्यक्ति अनादर की दृष्टि से देखते हैं।

दोष कई हो सकते हैं परन्तु यहाँ हम काव्यगत कतिपय मुख्य मुख्य दोषों का ही वर्णन करेंगे।

भिन्न भिन्न आचार्यों ने 'दोष' की परिभाषा भी भिन्न भिन्न शब्दों में की है, परन्तु वस्तुतः उनके अर्थ में कोई विशेष व्यवधान नहीं पड़ता। यथा—

१—**"उद्वेगजनको दोषः।"** (अग्निपुराणकार)
अर्थात् काव्य में उद्वेग उत्पन्न करने वाले को दोष कहते हैं।

२—**"गुणविपर्ययात्मानो दोषाः।"** (आचार्य वामन)
अर्थात् गुण के विरोधी तत्वों को दोष कहते हैं।

३—**"दोषास्तस्यापकर्षकाः।"** (आचार्य विश्वनाथ)
अर्थात् जो काव्य की रमणीयता में अपकर्षक हो, वही दोष है।

४—**"मुख्यार्थहति र्दोषो रसश्च मुख्यस्तदाश्रयाद्वाच्यः,**
उभयोपयोगिनः स्युः शब्दाद्या तेन तेष्वपि सः।" (आचार्य मम्मट)

अर्थात् जो काव्य की रसानुभूति में बाधक हो या जिसके द्वारा किसी उक्ति के मुख्यार्थ को समझने में किसी प्रकार की रुकावट पड़ती हो, उसे ही दोष कहते हैं।

'मम्मट' की इस परिभाषा को स्वीकार करने पर दोषों के मुख्य ५ भेद हो जाते हैं—(१) वाक्य दोष, (२) शब्द दोष, (३) अर्थ दोष, (४) छन्द दोष और (५) रस-दोष ।

(१) वाक्य दोष

जो वाक्य की रमणीयता में हीनता प्रकट करे, उसे वाक्य दोष कहते हैं। इसके ५ भेद हैं ।

(१) **अधिकपदत्व**—जहाँ वाक्य में कुछ ऐसे शब्द आ जायँ, जिनकी वहाँ आवश्यकता न हो और जिनको निकाल देने पर भी वाक्य के अर्थ में किसी प्रकार की न्यूनता न आय, वहाँ अधिकपदत्व दोष होगा । यथा—

"रावेर दोष न पायन को पग धूरि को भूरि प्रभाव महा है ।"

समा०—यहाँ 'भूरी' शब्द व्यर्थ का है ।

(२) **न्यूनपदत्व**—जहाँ किसी वाक्य में अभिलषित अर्थ की प्राप्ति के लिए कोई शब्द अपनी ओर से लगाना पड़े, वहाँ न्यूनपदत्व दोष होता है। यथा—

"समर्थ नहीं है चलने को ।"

समा०—यहाँ 'समर्थ... ...' के आदि में 'वह' आदि पद होना चाहिए। इसलिए यहाँ न्यूनपदत्व दोष होगा ।

(३) **पुनरुक्त**—एक ही अर्थ को अलग अलग शब्द द्वारा या एक ही शब्द को बार बार दुहराना 'पुनरक्ति' कहलाती है। यथा—

"राम ने बालि को मारा और राम ने राक्षसों को मारा और राम ने रावण का मारा ।"

समा०—उपर्युक्त वाक्य में 'राम ने' और 'मारा' पद की पुनरक्ति हुई है, अतः वाक्य दोषयुक्त हो गया है। यदि इस वाक्य को इस तरह से रख दिया जाय, कि 'राम ने बालि, रावण और राक्षसों को मारा ।" तो यह दोष निवारण हो जायगा ।

(४) **अक्रमत्व**—वहाँ वाक्य में शब्दों का प्रयोग क्रम से न हो, वहाँ अक्रमत्व दोता होता है। यथा—

(१) **हैं हाथी चिंघाड़ते।**

(२) **बच्चे हैं खेलते।**

(३) खा रहे हैं रोटी लड़के।

(४) चमकती चाँदी है।

समा०—उपर्युक्त उदाहरणों में क्रमभंग दोष हो गया है। यदि उन्हें क्रम से (पहले कर्त्ता, कर्म और फिर क्रियापद रख देने से) कर दिया जाय, तो इस दोष का परिहार हो जायगा।

(५) **समाप्तपुनरात्तदोषः**—यह दोष वहाँ होता है जहाँ वाक्य की समाप्ति पर पुनः एक विशेषण का प्रयोग कर दिया जाता है। यथा—

"**कौन हो तुम बसंत के दूत। विरस पतझड़ में** अतिसुकुमार॥"

समा०—यहाँ वाक्य की समाप्ति पर पुनः एक विशेषण (बसंत के दूत के लिए अतिसुकुमार) का प्रयोग कर दिया गया है। अतः यहाँ 'समाप्त-पुनरात्तदोष' होगा।

(२) शब्द-दोष

जहाँ शब्दों की रमणीयता में अपकर्षत्व हो, वहाँ शब्द दोष होता है। ये शब्द दोष ७ प्रकार के हैं।

(१) **दुःश्रव**—जहाँ शब्द कठोर वर्णों से बने होते हैं और सुनने में अच्छे नहीं लगते, वहाँ दुःश्रव दोष होता है। यथा—

"**बंकक्करि अति डंकक्करि अस, संकक्कुलि खल।**
सोचच्चकित, भरोचच्चलिय, विमोचच्चख-जल॥
तट्ठट्ठइ मन कट्ठट्ठिक सोइ रट्ठट्ठिल्लिय।
सद्दद्दि सिदिसि भद्दद्दवि भइ रद्दद्दिल्लिय॥"

समा०—उपर्युक्त उदाहरण में दुःश्रव या कर्णकटुता दोष आ गया है।

(२) **च्युतसंस्कृत दोषः**—जहाँ कोई शब्द व्याकरण के नियमों के विरुद्ध हो, वहाँ च्युतसंस्कृत दोष होता है। यथा—

"**रति की लावण्यता, सरस्वती की चातुर्यता, लक्ष्मी की कौटिल्यता और सीता की स्त्रीत्वता जगद्विख्यात है।**"

समा०—यहाँ लावरयता, चातुर्यता आदि का गलत प्रयोग किया गया है। वास्तव में होना चाहिए लावण्य, चातुर्य, कौटिल्य और स्त्रीत्व।

(३) **अप्रयुक्तत्व**—ऐसे शब्दों का प्रयोग जो व्याकरण कोष आदि से तो ठीक हों परन्तु बोलने में न आते हों, उनमें अप्रयुक्तत्व दोष होता है। यथा—

(१) "उत्ताराशापति रै का अधिपति है।"
[उत्तराशापति = उत्तर दिशा का स्वामी कुबेर] [रै = संपत्ति]

(२) "एकागारिकगण अपने नीच कर्मों से श्वभ्र को प्राप्त होते हैं।"
[एकागारिक = चोर] [श्वभ्र = नरक]

(३) "अग पर प्लवग बैठे हैं।"
[अग = वृक्ष] [प्लवग = बन्दर]

समा०—उपर्युक्त उदाहरणों में अप्रयुक्तत्व दोष आ गया है।

(४) **ग्राम्यत्व**—जहाँ साहित्यिक भाषा में गँवारू शब्दों का प्रयोग किया जाय। यथा—

(१) "तुम तो निखबख गँवार हो।"
[निखबख = बिलकुल]

(२) "इतनी अरबराइ क्यों कर रहे हो।"
(अरबराइ = शीघ्रता)

(३) "हूँ तो आज सलरमो देखिने आयो हूँ।"
(सलरमो = सिनेमा)

समा०—उपर्युक्त उदाहरणों में 'निखबख' आदि ग्रामीण शब्दों के प्रयोग से 'ग्राम्यत्व' दोष आ गया है।

(५) **अश्लीलत्व**—जहाँ भाषा में अश्लील शब्दों का प्रयोग किया जाता है, वहाँ अश्लीलत्व दोष आता है। यथा—

(१) "शिक्षक के डर के मारे मोहन ने **छुट्टी में मूत दिया**।"

(२) "मैं तो आज **लिंगाचर्न** करने नहीं जाऊँगा।"

(३) "भूत के डर के मारे बहुधा पामर व्यक्ति **पजामें में हंग देते हैं**।"

समा०—उपर्युक्त उदाहरणों में अश्लील शब्दों का प्रयोग किया गया है। अतः रचना में अश्लीलत्व दोष आगया है।

(६) **अप्रतितीत्व**—जहाँ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जाय, जिसका सम्बन्ध किसी विद्या-विशेष से हो या फिर वह शब्द परिभाषिक हो, वहाँ अप्रतीत्व दोष होता है। यथा—

(१) **"योषापस्मार के रोगी को कभी कभी शुद्ध मल्ल दिया जाता है।"**

[योषापस्मार = हिस्टीरिया रोग] [मल्ल = संखिया]

(२) **"ईश ध्यान से सब निज आशय**

करके नष्ट हुए, निष्पाप।"

(आशय = वासना)

(३) **"महत्तक का न्याय सर्वमान्य होता है।"**

(महत्तक = मजिस्ट्रेट)

समा०—उपर्युक्त शब्दों का जनसाधारण में प्रचलन नहीं होने के कारण अप्रतीतित्व दोष आगया है।

(७) **क्लिष्टत्व**—जहाँ किसी अर्थ के समझने में कठिनाई पड़े, वहाँ क्लिष्टत्व दोष होता है। यथा—

(१) **खगपति-पति-तिय-पितुवधू-जल समान तुव बैन।"**

(२) **"एक अचम्भा देखो चल, सूखी लकड़ी लाग्यो फल।**

जो कोइ उस फल को खाय, पेड़ छोड़ वह अंत न जाय॥" (भाला)

(३) **"हरिप्रिया-पितृ-वारि प्रवाह प्रतिमं वचः।"**

[हरि = कृष्ण + प्रिया = लक्ष्मी + पितृ = समुद्र] [प्रतिम = समान] (वचः = वचन)

समा०—यहाँ उपर्युक्त उदाहरणों में—अर्थ समझने में—कठिनाई पड़ने के कारण क्लिष्टत्व दोष आगया है।

(३) अर्थ-दोष

जिससे अर्थ की रमणीयता में अपकर्ष हो, उसे अर्थ-दोष कहते हैं। ये मुख्य ५ प्रकार के हैं:—

(१) **प्रसिद्धत्याग**—जहाँ जब कोई ऐसी बात कही जाय, जो लोक या शास्त्र-विरुद्ध हो। यथा—

(१) "मैं लै दयौ लयौ सु कर, छुवत छनक गौ नीर।
लाल तिहारो अरगजा, उर ह्वै लग्यो अबीर॥"

समा०—यहाँ विरहणी के संतप्त देह में अरगजा (केशरचन्दनादि का लेप) अबीर होके लगने के कारण प्रसिद्धत्याग आगया है।

इसी प्रकार—**(२) इत आवत चलि जाति उत, चली छ सातिक हाथ।**
चढ़ी हिंडोरे से रहे, लगी उसासनि साथ॥

(३) धूम तरंगनि तें उठत, यह अचरज मम आहि।
अनलरूप कोऊ विरहणी' मज्जन करगई साहि॥

(४) "साँझ भये भौन सँझाबाती क्यों न देत आली,
छाती तें छुवाय दियाबाती क्यों न बारि लै।"

(५) "काहू विधि, विधि की बनावट बचैगी नाहिं,
जापै वा वियोगिनी की आह कढ़ जायगी॥"

(२) "**अर्थ का घसीटना**:—जहाँ रूढ़ि या प्रयोजन के बिना किसी लाक्षणिक शब्द का प्रयोग किया जाय। यथा—

"थके हुए गुरुदेव ने अपने शिष्य से पदसंबाहन करने को कहा।"

समा०—यहाँ 'पद संवाहन' पद में दोष है। इसकी जगह 'पाँव दाबना' कहना चाहिये था। इसलिए इसमें 'नेयार्थता' (अर्थ का घसीटना) दोष आगया है।

(३) **निहतार्थता (अर्थ मारा जाना)**—किसी शब्द का अप्रसिद्ध अर्थ में प्रयोग करने से 'निहतार्थता' दोष होता है। यथा—

"दीप धूप से आमोदित था मंदिर का आँगन सारा।"

समा०—यहाँ 'आमोदित' शब्द 'सुगंधित' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, परन्तु इसका प्रसिद्ध अर्थ 'खुशी होना' है। इसलिए इसमें निहतार्थता दोष है।

(४) **व्याहतत्व**—किसी वस्तु का पहले अपकर्ष या उत्कर्ष दिखाकर फिर इसके विपरीत उत्कर्ष या अपकर्ष दिखाने पर 'व्याहतत्व' दोष होता है। यथा—

"रोड़ा ह्वै रहु बाटका, तजि पाखंड अभिमान।
ऐसा जो जन ह्वै रहे, ताहि मिले भगवान॥
रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देह।
हरिजन ऐसा चाहिये, जैसे जिमि की खेह॥"

समा०—यहाँ प्रथम दोहे में रोड़े का उत्कर्ष दिखाकर फिर दूसरे दोहे में उसी का अपकर्ष दिखाया है।

(५) **अपुष्टार्थत्व**—जहाँ किसी वस्तु के वर्णन में ऐसे शब्दों का प्रयोग हो कि जिनके निकाल देने पर भी इच्छित अर्थ की प्राप्ति में बाधा न पड़े, वहाँ 'अपुष्टार्थत्व' दोष होता है। यथा—

"कण कण में है यहाँ व्याप्त दृग सुखकारी,
मंजु मनोहारी मूर्ति मंजुल मुरारी की।"

समा०—यहाँ 'मंजुल' शब्द अनावश्यक है, क्योंकि इसका समानार्थी शब्द 'मंजु' पहले ही प्रयुक्त हो चुका है। अतः इसमें अपुष्टार्थत्व दोष होगा! और उदाहरण देखिये :—

(१) **अंकित ब्रजेश की छटा है सब ठौर यहाँ,**
लता-द्रुम-वल्लियों **में और फलफूल में।"**

(२) नीलम धूप को **देख वहीं उस कंजकली ने।**
स्वयं आगमन किया, कहा ये जनकलली ने॥

(३) **"त्यक्तहारमुरः कृत्वा शोकेनालिंगितांगना।"**

(६) **पतत्प्रकर्ष**—जहाँ प्रस्तुत विषय के क्रमागत प्रकर्ष को कोई हेय उक्ति कहकर नष्ट कर दिया जाय वहाँ 'पतत्प्रकर्ष' दोष होता है। यथा—

"रन्ध्रजाल ह्वै देखियतु, प्रियतन-प्रभा विशाल।
चामीकर चपला लख्यो, कै मसाल मनिमाल॥"

समा०—उपर्युक्त उदाहरण में 'प्रिय के तन की प्रभा' का प्रकर्ष बतलाने के लिए 'चामीकर चपला' कहकर 'कै मसाल मनिमाल' कह देने से पतत्प्रकर्ष दोष आ गया है। क्योंकि स्वर्ण और विद्युज्ज्योति के सामने 'मणियों की मशाल' सर्वथा फीकी है।

(४) छन्द दोष

जो छंद की रमणीयता में अपकर्षक हो, उसे छन्द दोष कहते हैं। इसके मुख्यतः ३ दोष होते हैं :—

(१) **गतिभङ्ग दोष** :— जहाँ छन्द की मात्राओं या उसके वर्णों की संख्या ठीक होने पर भी उसकी गति (लय) ठीक न हो, वहाँ उक्त दोष होता है। यथा—

"राम संमत्रु बरबस पठाए।"
ऽ। ऽ।। ।।।। ।ऽऽ = १६ मात्रा

समा०—उपर्युक्त 'चौपाई छन्द' का यह पद पिंगल के नियमानुकूल है। परन्तु इसकी गति ठीक नहीं होने के कारण वह गतिभंग दोष से दूषित हो गया है।

(२) **यतिभंग दोष** :— जहाँ छन्द की गति ठीक होने पर भी उसकी यति ठीक न हो। यथा—

"भगवान का ले नाम तू भवपार होने को।"
।।ऽ। ऽ ऽ ऽ। ऽ(।।)।।ऽ। ऽऽ ऽ

समा०—उपर्युक्त सोरठे छंद में यतिभंग दोष है, क्योंकि सोरठे के प्रथम और तृतीय चरण में १३-१३ और द्वितीय और चतुर्थ चरण में ११-११ मात्राओं की यति से २४ मात्राएँ होती हैं, परन्तु उक्त सोरठे में प्रथम चरण के द्विकली 'तू' शब्द से यति भंग हो गई है।

(३) **हतवृत्तत्व** :—रस के प्रतिकूल जहाँ छन्दों का वर्णन किया जाता है, वहाँ 'हतवृत्तत्व दोष' होता है। यथा—

(१) **मंदाक्रान्ता वृत्त**—"शास्त्रों का हो पठन सुखदा, लाभ सत्संगती का।
सद्वृत्तों के सुगुन कहके, दोष ढांकू सभी का॥
बोलूँ प्यारे वचन हित के, आपको रूप ध्याऊँ।
तौलों सेऊँ चरन जिनके, मोक्ष जौलों न पाऊँ॥"

(२) **स्त्रग्धरावृत्त**—"होवै सारी प्रजा को, सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा।
होवै वर्षा समै पे, तिलभर न रहे व्याधियों का अँदेशा॥
होवै चोरी न जारी, सुसमय वरतै, हो न दुष्काल भारी।
सारे ही देश धारैं, जिनवर वृष को जो सदा सौख्यकारी॥"

समा०—उपर्युक्त उदाहरणों में—'मन्दाक्रान्ता' और 'स्त्रग्धरा' वृत्तों के अनुकूल रस क्रमशः करुण और शृंगार हैं, परन्तु इसके विपरीत इन छन्दों का वर्णन 'शान्तरस' में किया गया है। अतः ये हतवृत्तत्वदोष के उदाहरण हुए।

(५) रस-दोष

जहाँ रस की रमणीयता में अपकर्षण हो, उसे रस-दोष कहते हैं। इसके मुख्य १० भेद हैं :—

(१) **स्वशब्द वाच्यत्व**—जहाँ रस, भाव, विभाव आदि का वर्णन सनाम वर्णित हो, वहाँ स्वशब्दवाच्यत्व दोष होता है। यथा—

**"सुख सुखाहिं लोचन श्रवहिं, शोक न हृदय समाय।
मनहुँ करुणरस कटकहि, उतरी अवध बजाय॥"**

समा०—यहाँ 'शोक न हृदय समाय' व 'मनहुँ करुणरस कटकहि' कह कर क्रमशः 'शोक' स्थायीभाव और 'करुणरस' का वर्णन कर दिया है। अतः उक्त दोहा स्वशब्दवाच्यत्व दोष से दूषित हो गया है।

(२) **विभावानुभाव की कष्ट कल्पना**—जहाँ ये मालूम करना कठिन हो कि यह विभाव वा अनुभाव किस रस का है, तब वहाँ उक्त दोष होता है।

(३) **रसपुनरोद्दीप्त दोष**—जब किसी रस का उत्कर्षापकर्ष बताने के हेतु उसे बार बार उद्दीप्त किया जाय है, तब 'रसपुनरोद्दीप्त' दोष होता है।

(४) **परिपथ रसांग परिग्रह**—जहाँ प्रस्तुत रस के साथ उसके विरोधी रस की सामग्री का वर्णन कर दिया जाता है, वहाँ 'परिपथरसांग परिग्रह दोष' होता है। यथा—

शृंगार रस के साथ भयानक रस के अंगों का वर्णन करना।

(५) **अकाण्ड प्रथनदोष**—जहाँ वर्ण्य विषय को छोड़कर अवर्ण्य या अप्रस्तुत विषय का विस्तार बतलाया जाय, वहाँ 'अकाण्ड प्रथन दोष' होता है।

(६) **अकाण्ड छेदन दोष**—जहाँ किसी रस के परिपाक होने की अवस्था में काकतालीय उसके विरोधी रस का वर्णन कर दिया जाय, वहाँ 'अकाण्ड छेदन' दोष होता ।

(७) **अंगभूतरसातिवृद्धि**—जहाँ काव्य में प्रधान रस (अंगी) का बराबर ध्यान न रखने के कारण अन्य किसी रस (अंग) का अधिक विस्तार के साथ वर्णन कर दिया जाता है, तब वहाँ 'अंगभूतरसातिवृद्धि' दोष होता है ।

(८) **अंगीविस्मृति दोष**—जहाँ आवश्यक प्रसंग उपस्थित होने पर आलम्बन और आश्रय को बिलकुल भुला दिया जाता है, वहाँ 'अंगीविस्मृति दोष' होता है ।

(९) **प्रकृतिविपर्यय दोष**—जहाँ देश, काल, पात्रादि का उलट फेर के वर्णन किया जाता है, वहाँ 'प्रकृतिविपर्यय दोष' होता है। यथा—

(१) किसी दिव्य (देवता) नायक के वर्णन में संभोगश्रृंगार रूपी रति भाव का वर्णन ।

(२) अदिव्य (मनुष्य) नायक का पर्वत आदि उठाने का वर्णन ।

(३) शीत काल में जलक्रीड़ा आदि का वर्णन ।

(४) सिंह, तेंदुआ, चीता आदि हिंस्र पशुओं में सारल्य-वर्णन ।

(१०) **अनंग वर्णन दोष**—जहाँ जो प्रकृत रस का अंग न हो, वहाँ उस अंग का वर्णन कर देने पर 'अनंग वर्णन दोष' होता है।

(११) **अनौचित्य**—रचना में औचित्य (लोक-शास्त्र-मर्यादा) का सदैव ध्यान रखना चाहिये। ऐसा न करने से रचना का रस भंग हो जाता है। कहा भी है—'अनौचित्यादृते नान्यद्रसभंगस्य कारणम्'। अर्थात् अनौचित्य के बराबर रसभंग का अन्य कोई कारण नहीं है।

आवश्यक निवेदन

पाठकवृन्द ! हमने यहाँ मुख्य-मुख्य दोषों का ही वर्णन किया है। वस्तुतः दोषों की संख्या वर्णनातीत हैं, जिन दोषों का वर्णन करने के लिए स्वयं वाग्भट्ट भी अपने आप को असमर्थ पाते हैं, फिर मुझ जैसे अतिशय अल्पज्ञ की क्या बिसात है ? अस्तु,

यदि सूच पूछा जाय 'दोष-प्रदर्शन' करना या दोषों के बारे में कुछ लिखना--महादोष है, क्योंकि इससे बहुधा लाभ कम और हानियाँ अत्यधिक हो जाती हैं। प्रायः साहित्यकार दोषों की इतनी बड़ी संख्या को देखते ही कलम छोड़ देते हैं। कर्मठ लेखक और दिग्गज विद्वान् इसके अपवाद हैं फिर भी हम इतना तो निस्संदेह कह सकते हैं कि सुलेखक और दिग्गज विद्वान् भी कभी-कभी इतनी महत् भूल कर बैठते हैं कि जिसका कोई जवाब नहीं। फिर बेचारे यदि नवीन लेखक इन दोषासुरों के दर्शन मात्र से दम तोड़ दें तो कोई आश्चर्य नहीं।

कविवर हर्ष ने भी ऐसे ही (मुझ जैसे) ऐब बयाँ करने-वालों से कहा है—

"गुणेन केनापि जनेऽनवद्ये; दोषांतरोक्तिः खलु तत्खलत्वम्।"

—अर्थात् 'दोष प्रदर्शन' करना कोई अच्छा काम नहीं, प्रत्युत् बड़ा ही नीच काम है, फिर इस पृथ्वी पर एक भी पदार्थ निर्दोष नहीं है, सभी दोषी हैं; परन्तु इतना अंतर अवश्य है कि कोई कम दोषी है तो कोई ज्यादा। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति ने केवल गुणग्राही होना चाहिये। यदि कोई भूल करता है तो उसका संशोधन करना चाहिये, परन्तु सब मनुष्यों का स्वभाव एकसा नहीं होता। कोई कोई तो दोषज्ञता में अतिशय पटु होते हैं, फिर भी जहाँ दोषज्ञ होते हैं वहीं गुणों की कदर करनेवाले भी होते हैं। ऐसे महापुरुष अवश्य गिरते हुए को उठा लेते हैं, जैसा कि किसी ने कहा भी है :—

**"धावतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः॥"**

—अर्थात् दौड़ते हुए आदमी का प्रमादवशात् कहीं गिर जाना संभव है। वहाँ दुर्जन तो गिरने वाले पर हँसने लगते हैं और भले आदमी उसे दौड़कर गिरने से बचाने का प्रयत्न करते हैं।

६. काव्यार्थ-सिद्ध्युपाय

"शक्ति निपुणता लोककाव्यशास्त्राद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञ-शिक्षाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ॥"—मम्मटाचार्य

और

"प्रतिभैव श्रुताभ्यास सहिता कवितां प्रति ।
हेतुर्मृदम्बुसंबद्ध बीजव्यक्तिर्लतामिव ॥" —श्री जयदेव कवि

कवि या लेखक बनने के लिए ३ बातों का होना आवश्यक है, वे तीन बातें इस प्रकार हैं—(१) शक्ति (प्रतिभा), (२) निपुणता (व्युत्पत्ति) और (३) अभ्यास । ये तीनों काव्य-निर्माण के हेतु हैं, उपाय हैं ?

(१) प्रतिभा (शक्ति)

"काव्यघटानुकूल शब्दार्थोपस्थितिः ।" (पंडितेन्द्र जगन्नाथ)

—अर्थात् जिस शक्ति के द्वारा काव्य के अनुकूल शब्द और अर्थ कवि के मस्तिष्क में प्रादुर्भूत होते हैं, उसे 'प्रतिभा' कहते हैं। या सीधे-सादे शब्दों में यों कहें कि 'कवित्व शक्ति का नाम ही प्रतिभा है' तो कोई अनुचित न होगा।

आचार्य मम्मट और दण्डी ने प्रतिभा को नैसर्गिकी—अर्थात् ईश्वर के द्वारा प्राप्त होनेवाली—कहा है, जिसे व्युत्पत्ति और श्रुताभ्यास से प्राप्त करना नितान्त असंभव है। यह तो किसी विरले ही पुरुष को प्राप्त होती है अंग्रेजी में भी कहावत है कि—'Poet is not made but born.'—अर्थात् कवि बनाये नहीं जाते किन्तु पैदा होते हैं। परन्तु आचार्य रुद्रट ने 'सहजोत्पाद्या सा द्विधा भवति' कहकर प्रतिभा को व्युत्पत्ति और श्रुताभ्यास के बल पर साधा है। आपका कथन है कि प्रतिभा नैसर्गिकी नहीं, सहजोत्पाद्या (सहज में प्राप्त होनवाली) है, जिसे लोकवेक्षण, काव्यादि शास्त्रपरिशीलन और किसी काव्यज्ञ के पास अभ्यास आदि करने पर प्राप्त किया जा सकता है।

अभिनवगुप्तपादाचार्य ने प्रतिभा को 'आख्या' और राजशेखर ने 'कारयित्री' कहा है।

(२) व्युत्पत्ति (निपुणता)

'......**निपुणता लोक काव्यशास्त्रोद्यवेक्षणात्**'। (**काव्य-प्रकाश**)

लोक काव्यशास्त्रादि के वेक्षण से प्राप्त ज्ञान को निपुणता (व्युत्पत्ति) कहते हैं।

मम्मटाचार्य ने इसी को निपुणता, हेमचन्द्र ने प्रतिभा-पोषक, वामन ने काव्यार्थ सिद्ध्युपाय और वाग्भट्ट ने प्रतिभालंकार (प्रतिभाकारणं तस्य व्युत्पत्तिस्तु विभूषणम्) कहा है।

(३) अभ्यास

'**काव्यज्ञ-शिक्षाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे**।' (**काव्यप्रकाश**)

किसी काव्यकलाविशारद के समीप काव्यरचना का अभ्यास करना कवित्व शक्ति का तीसरा हेतु है? राष्ट्रीय कवि मैथिलीशरण गुप्त और छायावाद के प्रवर्तक पं० जयशंकर प्रसाद भी कई दिनों तक आचार्य द्विवेदी के पास काव्याभ्यास करते रहे थे, यह इसी शक्ति का प्रताप है कि ये इतने अच्छे कवि हो सके।

आंग्लभाषा में भी इसी प्रकार एक कहावत है—Practice makes a man perfect. (करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान)।

कवियों की विविध श्रेणियाँ व शब्दार्थापहरण विचार

काव्य के रचयिता 'कवि' कहलाते हैं और (रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्)। रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द को काव्य कहते हैं।

अर्थात् जिस व्यक्ति में—रमणीय अर्थ के प्रतिपादन करने वाले शब्दों द्वारा रचना करने की क्षमता हो, उसे 'कवि' कहते हैं। इनकी कुछ प्रमुख-प्रमुख श्रेणियों का ही हम यहाँ वर्णन करेंगे!

(१) सुकवि

"यदपि तदपि रम्यं यत्र लोकस्य किञ्चित्।
स्फुरितमिदमितीयं बुद्धिरभ्युज्जिहीते॥

अनुगतमपि पूर्वच्छायया वस्तु तादृक्।
सुकवि रूपनिबध्नन् निन्द्यतां नोपयाति ॥"—ध्वन्यालोक

अर्थात् जिस कवि की कविता में कुछ नवीन चमत्कार हो, फिर उसमें पूर्वकवि की छाया (शब्दार्थ प्रतिबिम्ब) भी क्यों न हो, वह सुकवि है !

इसी प्रकार—

"कविनुहरतिच्छायामर्थं कुरुचिः पदादिकं चौरः।
सर्वप्रबन्धहरत्रे साहसककें नमस्तस्मै ॥"

अर्थात् दूसरों की छाया को ग्रहण करने वाला 'कवि' अर्थों या भावों की चोरी करने वाला 'कुकवि', पदों की चोरी करने वाला चौर और सर्वपदहर्त्ता देव तो दूर से ही नमस्कार करने योग्य है।

(२) महाकवि

(१) दण्डी के मतानुसार—

"न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला।
जायते यन्न काव्यांगमहो भारो महान्कवे ॥"

न कोई ऐसा शब्द है, न कोई ऐसा अर्थ है, न कोई ऐसा न्याय है और न कोई ऐसी कला है; जो काव्य का अंग न हो। इसलिए जो उपर्युक्त भार वहन करने के योग्य हो, वह "महाकवि" है ?

(२) आचार्याभिनवगुप्त के मतानुसार—प्रतीयमानानुप्राणित—काव्यनिर्माण निपुणप्रतिभाजनत्वेनैव महाकविव्यपदेशो-भवतीति भावः।"

अर्थात् प्रतीयमान अर्थ (ध्वन्यर्थ) से युक्त काव्यरचना की जिनमें निपुणता है, वही "महाकवि" कहलाने योग्य है !

(३) राजशेखर के मतानुसार—

(i) **"शब्दार्थोक्तिशु यः पश्येदिह किञ्चिन नूतनम्।**
उल्लिखेत्किञ्चन प्राच्यं मन्यतां स महाकविः ॥"

अर्थात् जो प्राच्य (पूर्वकथित) भाव को शब्दार्थ से नवीन बना दे, या जो पहले कही हुई उक्ति में लेशमात्र भी नवीनता उत्पन्न कर दे, वही "महाकवि' है।

(२) **"नास्त्यचौरः कविजनो, नास्त्यचौरो वणिग्जनः।**
स निन्दति विना वाच्यं, यो जानाति निगूहितुम्॥"

प्रायः कविगण और व्यापारिगण चौर नहीं होते, परन्तु ये कभी प्रमाद-वशात् चौरी भी कर लेवें और अपने इस दुष्कृत्य को प्रकाश में न आने दे व लोकनिन्दा से बचे रहें; वेही "महाकवि" हैं।

(४)**विश्वनाथ के मतानुसार**—जो एक बृहदाकार ग्रंथ का निर्माण करे, वही महाकवि है।

(३) कविराज

"रसे स्वतन्त्रेः स कविराजः ते यदि जगत्यपि कतिपये।"

—राजशेखर

अर्थात् रस-स्वतन्त्र कवि "कविराज" है। यद्यपि ऐसे कविराज इस अवनितल पर कतिपय (थोड़े) ही हैं।

शब्दार्थापहरण

किसी कवि ने किसी व्यक्ति के शब्दों को ज्यों का त्यों प्रयोग करना शब्दापहरण (शब्दों की चौरी) कहलाता है और अर्थों का अपहरण अर्थापहरण कहलाता है। बहुधा कवि एक दूसरे के विचारों को नहीं लेते फिर भी अनायास ही उनके विचार एक दूसरे की रचना से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। इस प्रकार के शब्द साम्य और अर्थसाम्य को 'साहश्य' कहते हैं। ध्वन्यालोककार आचार्य श्री आनन्दवर्द्धन ने साहश्य के ३ भेद बतलाये हैं—

(१) प्रतिबिम्बित्, (२) आलेख्यवत् और (३) तुल्यदेहिवत्। 'काव्य-मीमांसा' के लेखक पं० राजशेखर ने इन्हीं तीनों भेदों को क्रम से (१) प्रतिबिम्बिकल्प, (२) आलेख्यप्रख्य और (३) तुल्यदेहितुल्य—नाम दिया है।

(१) **प्रतिबिम्बवत्**—जहाँ जिसकी रचना में पूर्व कवि के भावों का प्रतिबिम्बिवत् भाव आ जाता है, वहाँ प्रतिबिम्बवत् साहश्य होता है। यथा—

(१) **हग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चितप्रीति।**
परति गांठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति॥ (बिहारी)

बिहारी के इस दोहे का प्रतिबिम्बित भाव रसनिधि ने ग्रहण किया है। देखिये—

अद्भुत गति यह प्रेम की, लखो सनेही जाय।
जुरै कहूँ टूटै कहूँ, कहूँ गांठ परिजाय॥ (रसनिधि)

इसी प्रकार—पद्माकर ने भी बिहारी के भाव प्रतिबिम्ब को ग्रहण किया है।

(२) भौंहनि भासति मुख नटति, आंखिन सों लपटाति।
ऐंचि छुड़ावत कर इँची, आगे आवति जाति॥ (बिहारी)

* * * *

कर ऐंचत आवत इँची, तिय आपहि पिय ओर।
झूठि हूँ रूसि रहै, छिनक छुवत छराको छोर॥

इसी प्रकार रामसहाय दास जी ने भी बिहारी के भाव प्रतिबिम्ब को ग्रहण किया है। देखिए—

(३) औंधाई सीसी गुलाब की; बिरह बिरति बिललात।
बिच ही सूख गुलाब गौ, छींटौ छुईन गात॥ (बिहारी)

* * * *

बिरह आँच नहीं सहि सकी, सखी भई बेताब।
चनकि गई सीसी गयौ, छिरकत छनकि गुलाब॥ (रामसहायदास)

(२) आलेख्यवत्—जहाँ किसी की रचना में आलेख्यवत् सादृश्य हो। यथा—

(१) ललित श्याम लीला ललन, चढ़ी चिबुक छबि दून।
मधु छाक्यो मधुकर पर्‌यौ, मनौ गुलाब प्रसून॥ (बिहारी)

इसका अपहरण इन महाशय ने किया है। देखिये—

"अति दुति ठोढ़ि बिन्दु की, ऐसी लखी कहूँन।
मधुकर सूतु छक्यो पर्‌यौ, मनौ गुलाब प्रसून॥"

(२) "लिखन बैठि जाकि सबिहि, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥" (बिहारी)

इसके अपहर्त्ता ये देव 'रामसहाय—

"सगरब गरब खिचैं सदा, चतुर चितेरे आय।
पर वाकी बाँकी अदा, नेकु न खींची जाय॥ (रामसहायदास)

सूचना :—उपर्युक्त 'प्रतिबिम्बवत्' और 'आलेख्यवत्' सादृश्य कविगणों के लिए परिहरणीय है। सुतरां सुकवि कहलाने की इच्छा रखनेवालों ने इससे बिलकुल बचना चाहिये!

(३) **तुल्यदेहिवत्**—जहाँ किसी कवि की रचना की छायामात्र ग्रहण की जाय, वहाँ तुल्यदेहिवत् सादृश्य होता है। यथा—

(१) **"सुवर्ण बहु यस्यास्ति तस्य न स्यात्कथं मदः।**
नामसाम्यादहो यस्य धुस्तूरोपि मदप्रदः॥"

—अर्थात् जिस व्यक्ति के पास बहुत सा सोना है उसे मद क्यों न हो, जबकि 'सुवर्ण' के नाम साम्य (नामराशी होने) से धतूरा भी मदप्रद हो गया है।

* * *

"कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाय।
उहिखाये बौराय जग, इहि पाये बौराय॥ (बिहारी)

(२) **शंकरशिरसि निवेशित पदेति मा गर्वमुद्वहेन्दुकले!**
फलमेतस्य भविष्यति चण्डीचरण रेणुमृजा॥ (गोवर्द्धनाचार्य)

—अर्थात् शंकरजी के सिर पर सुशोभित इन्दुकला (चन्द्रकला) को इंगित कर कोई कह रही है कि हे चन्द्रकले! यह सोचकर कि मैं भूतेश्वर शंकर के सिर पर चढ़ी हूँ—मत गर्व कर, जानती हो इसका यह फल होगा कि तुम्हें चण्डी (पार्वती) के चरणों की धूल साफ करना पड़ेगी।

* * * *

"मोरचन्द्रिका स्यामसिर, चढ़ि कत करत गुमान।
लखबी पायनि पर लुठति, सुनियत राधा मान॥" (बिहारी)

समा०—उपर्युक्त उदाहरणों में 'तुल्हदेहिवत् सादृश्य' दिखलाया गया है। इसमें अर्थापहरण होते हुए भी आचार्यों ने इसे उपादेय ठहराया है, परन्तु

अपहरण हो चाहे शब्दार्थ का चाहे छाया का, आखिर अपहरण (चौरी) ही है। कोई भी अपहर्त्ता ऐसे निन्दनीय कर्म से नहीं बच सकता। फिर भी बचाने की कोशिश की गई है और वह है भी ठीक क्योंकि—

—प्रायः कजिजन चौर नहीं हुआ करते और फिर कवि जो मजमून बाँधता है वही दूसरे की रचना में भी आ सकता है—ऐसे कई उदाहरण हैं, जिनसे यह स्पष्ट है। यह सोचकर ही इन निरपराध कविगणों के हितार्थ आचार्यों ने भी 'स निन्दति विना वाच्यं यो जानाति निगूहितुम्' और 'शब्दार्थोक्तिशु ....स महाकविः' का विधान किया है।

---

१०. पिंगल-प्रकाश
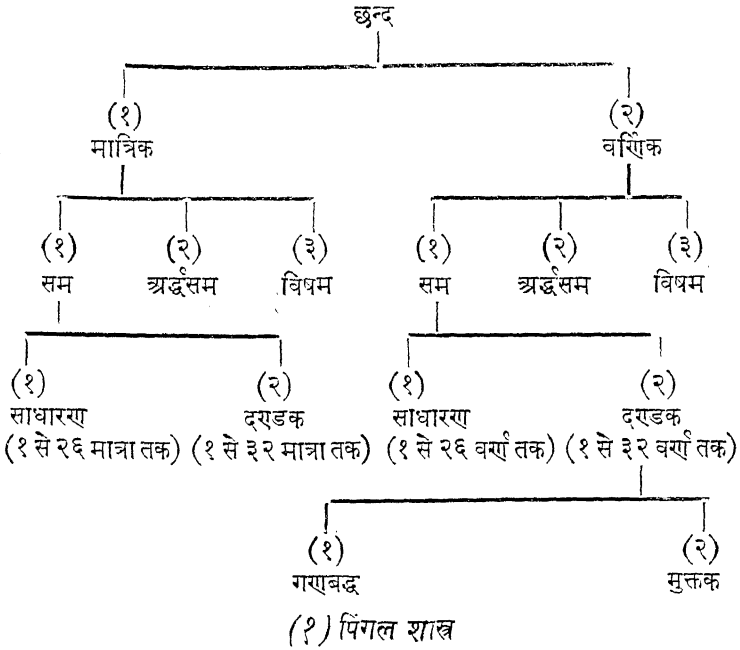
(१) पिंगल शास्त्र

छन्दः शास्त्र के निर्माता पिंगलाचार्य (शेष के अवतार) हैं। इसीलिए इनके बनाये गये ग्रंथ को 'पिंगल शास्त्र' भी कहते हैं। 'नाग', फणीश्वर आदि शब्द पिंगलाचार्य के प्रतिशब्द हैं।

(२) छन्द (वृत्त)

पिंगलशास्त्र के नियमों से बद्ध रचना को छन्द कहते हैं। इसके २ भेद हैं—(१) मात्रिक और (२) वर्णिक

(१) **मात्रिक छन्द**—"मात्राक्षरसंख्यया नियता वाक् छन्दः" (छन्दः परिमल) जिसके चारों चरणों में मात्राओं की संख्या समान हो, उसे मात्रिक छन्द कहते हैं।

(२) **वर्णिक छन्द**—'गलसमवेत स्वरूपेण नियता वाग्वृत्तम्।' (छन्दः परिमल) जिसके चारों चरणों में गुरुलघु के नियम से वर्णों की संख्या समान हों, उसे वर्णिकवृत्त या छन्द कहते हैं। इन्हीं के सम, अर्द्धसम और विषम ये ३-३ भेद और हैं—

(१) **सम**—जिसके चारों चरणों की मात्रा या वर्ण समान हो, उसे 'सम' कहते हैं।

(२) **अर्द्धसम**—जिसके पहले और तीसरे चरण की मात्रा या वर्ण समान हो, उसे अर्द्धसम कहते हैं।

(३) **विषम**—जिसके चारों चरणों की वर्ण या मात्रा-संख्या विषम हो, उसे विषम कहते हैं? न्यूनाधिक चरण भी इसमें ही होते हैं।

सम के साधारण और दण्डक के क्रम से २-२ भेद हैं—

(१) **समसाधारण छन्द**—१ से ३२ मात्रावाले छन्द, साधारण छन्द कहलाते हैं।

(२) **दण्डक छन्द**—३२ मात्रा से अधिक मात्रा वाले छन्द, दण्डक छन्द कहलाते हैं?

(३) **साधारण वृत्त**—१ से ३२ वर्ण तक के छन्द, साधारण वृत्त कहलाते हैं?

(४) **दण्डक वृत्त**—३२ वर्णों से अधिक वर्ण वाले छन्द, दण्डक वृत्त कहलाते हैं?

दण्डक वृत्त के २ भेद

(१) **गणबद्ध**—गणों से बद्ध रचना को गणबद्ध कहते हैं। गण ८ हैं—मगण, नगण, भगण, यगण, जगण, सगण, रगण और तगण।

वर्णिक गण

गणसंज्ञा	संक्षिप्तरूप	रेखारूप	स्वामी	फल	शुभाशुभ	अवतार
मगण	म	SSS	पृथ्वी	श्री	शुभ	मत्स्य
यथा—'मो भूमिः श्रियमामनोति ।'						
नगण	न	III	स्वर्ग	सुख	,,	कृष्ण
यथा—'नो नाकश्च सुखप्रदः फलमिदं प्राहुर्गणानां बुधाः ।'						
भगण	भ	SII	शशि	यश	,,	रामचंद्र
यथा—'भेन्दुर्यशो निमर्लम् ।'						
यगण	य	ISS	जल	वृद्धि	,,	कच्छप
यथा—'य जलं वृद्धिम् ।'						
जगण	ज	ISI	सूर्य	भय	अशुभ	परशुराम
यथा—'जः सूर्यो रुजकाददाति विपुलम् ।'						
सगण	स	IIS	वायु	भ्रमण	,,	नृसिंह
यथा—'सो वायुः परदेशदूर गमनं ।'						
रगण	र	SIS	अग्नि	दाह	,,	वाराह
यथा—'र चाग्निमृ्तिम् ।'						
तगण	त	SSI	व्योम	शून्य	,,	वामन
यथा—'त व्योम शून्यं फलम् ।'						

छन्द के आदि में पहले चार गणों का लाना शुभ और पिछले चार गणों का लाना अशुभ माना जाता है, परन्तु मंगलाचरण या प्रार्थनादि में इस बात का विचार नहीं किया जाता ।

अशुभ गण के पश्चात् एक शुभ गण रख देने से भी दोष निवारण हो जाता है !

(२) **मुक्तक**—उन्हें कहते हैं, जिनके प्रत्येक चरण में केवल वर्णों की गणना की जाय । इसमें मात्राओं और गणों का कोई विचार नहीं होता । संयुक्त

वर्ण अपने सहयोगी के साथ केवल एक ही वर्ण समझा जाता है। 'मुक्तक' पद की परिभाषा अग्निपुराणकार ने इस प्रकार दी हैं—

"मुक्तकं श्लोक एवैकश्चमत्कार क्षमः सताम्।"

अर्थात् जो श्लोक (पद्य) स्वतः अपने चमत्कार प्रदर्शन करने की क्षमता रखता हो, वही मुक्तक है।

(२) पद्यरचना (छन्द के विषय में आवश्यक ज्ञेय बातें)

शुभाक्षर—क, ख, ग, घ, च, छ, ज, द, ध, न, य, श, स, और क्ष।

अशुभाक्षर—ङ झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ प, फ, ब, भ म य र ल व ष ह त्र ज्ञ, ड़ और ढ़।

इन २५ वर्णों में से ५ वर्ण तो मुख्य चुन लिये गये हैं। वे झ, ह, र, भ और ष **दग्धाक्षर** कहलाते हैं। इनको आदि में रखने से छन्द दूषित हो जाते हैं। ये ही शब्द यदि देवतावाची हों या किसी मंगलाचरण या प्रार्थना के पहले प्रयुक्त हुए हों वा आदि में ये ही अक्षर दीर्घ हों तो दग्धाक्षर से छन्द दूषित नहीं होता।

गुरु और लघु वर्ण :—'गुर्वश्च गुरुरेकः स्याल्लस्त्वेको लघुरुच्यते।
रेखाभ्यामृजुवक्राभ्यां ज्ञेयौ लघुगुरू क्रमात्॥"
—(छन्दः कौस्तुभ)

ह्रस्वाक्षर को लघु और दीर्घाक्षर को गुरु कहते हैं। इनके चिह्न क्रम से ऋजुरेखा (।) और वक्ररेखा (ऽ) है।

मात्रा—किसी वर्ण के उच्चारण में जितना समय लगे उतने समय को 'मात्रा' कहते हैं। मत्त, मत्ता, कल, और कला इसके पर्याय हैं।

तुक :—कविता के चरणान्त में दो या दो से अधिक स्वर की जो आवृत्ति होती है, उसे ही 'तुक' कहा जाता है। यथा—

'लखि स्याम लीजै, दुख टारि दीजै।'

में (लीजै-दीजै) 'ईऐ' स्वर की आवृत्ति हुई है, इसे ही तुक कहते हैं। आजकल कुछ अतुकान्त कविताएँ भी की जाने लगी है। स्वर्गीय 'हरिऔध' प्रणीत 'प्रिय-प्रवास' नामक ग्रंथ इसी का निदर्शन है। देखिये—

"दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरुशिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥"

तुक के कतिपय भेद

(१) **सर्वान्त्य**—जिस छन्द के चारो चरणों के अन्ताक्षर एक से हों। यथा—

"ब्रह्म को जानिये। वेद को मानिये॥
धर्म को धारिये। मोह को मारिये॥"

(२) **समान्त्य विषमान्त्य**—जिसके सम से सम और विषम से विषम चरणों के तुक मिलें। यथा—

"सुलली चल। जहाँ गायक॥
यमुना थल। यदुनायक॥"

(३) **समान्त्य**—जिस छन्द के केवल समचरणों के तुक मिलें। यथा—

"अच्युत चरण तरंगिणी, शिव सिर मालती माल।
हरि न बनायो सुरसरि, कीजै इंदव-भाल॥"

(४) **विषमान्त्य**—जिसके केवल विषम चरणों के तुक मिलते हों। यथा—

"तुमहीं सो है काज, श्रीराधा श्रीनाथ प्रभु।
राखौ मेरी लाज, सेवौं तो पदकंज को॥"

(५) **समविषमान्त्य**—जिस छन्द के प्रथम चरण का अन्ताक्षर दूसरे चरण के अन्ताक्षर से और तृतीय चरण का अन्ताक्षर चतुर्थ चरण के अन्ताक्षर से मिले। यथा—

"ससि बाल खरो। शिव भाल धरो॥
१ २
अमरा हरखे। तिलका निरखे॥"
३ ४

(६) **भिन्नतुकान्त**—जिस कविता के तुक सब चरणों में असमान हों। यथा—

> **"यदपि विश्व प्रपंच से।**
> **पृथक-से रहते नित आप हैं॥**
> **पर कहाँ जगत को जनत्राण है।**
> **प्रभु गहे पद-पंकज के बिना॥"**

तुक के अन्य ३ भेद

(१) **उत्तम तुकांत**—जिन छन्दों के चरणों के अन्ताक्षर समान हों। यथा—

> "**मूला** धार। ही में धार॥ **राधे** श्याम। **आठों** याम॥"

(२) **मध्यम तुकांत**—जिस छन्द के दो या तीन वर्णों के स्वर समान हों। यथा—

> **"निधि लहो अपार।**
> **अभिराम उदार॥**
> **नर जनम सुधारि।**
> **प्रभु पद हिय धार॥"**

(३) **निकृष्ट**—जिस छन्द के अन्ताक्षरों के स्वर असमान हों। यथा—

> **"मोहन देखिये। हमको चाहिये॥**
> **जो तुम कहत। वहि हैं उचित॥"**

वर्ण—उस मूलध्वनि को कहते हैं, जिसके टुकड़े न हो सकें। 'अक्षर' शब्द इसका पर्यायवाची है।

गति (लय)—छन्द को पढ़ने के प्रवाह को गति या लय कहते हैं। मात्राओं के रहते हुए भी यदि छन्द में गति का अभाव हो तो, वह छन्द, छन्द कहलाने के योग्य नहीं है। यथा—

> **"दीप की गति जोइ है, कुल कपूत की सोय।**
> **करै उजियारो बारे, अन्धेरो बढ़ै होय॥"**

समा०—उपर्युक्त छन्द में मात्राएँ सब बराबर हैं, परन्तु गति के अभाव में मामला ही बिगड़ गया है। यदि इसी को इस प्रकार उलट दिया जाय तो सब ठीक हो जायगा—

> **"जोइ गति है दीप की, कुल कपूत की सोय।**
> **बारे उजियारो करै, बढ़ै अंधेरो होय॥"**

यति (विराम)—'यतिर्विच्छेदः ।६।१॥ छं० शा०

छन्द को पढ़ते समय जहाँ कुछ समय के लिए रुकना पड़ता है, उस रुकावट को ही यति या विराम कहते हैं।

भामह ने भी लिखा है—'यतिश्छन्दोऽधिरूढानां शब्दानां या विधारणां'। (कां० लं० ४।२४)

यथा—'**रहिमन विपदा हू भली, जो थोरे दिन होय।**'

समा०—इस पद में 'रहिमन विपदा हू भली' पर कुछ समय के लिए रुकना पड़ता है। विराम प्रकट करने के लिए प्रायः (,) और (;) चिह्नों का प्रयोग करते हैं। यह प्राय चरणान्त में या विशेषतः श्लोक (पद्य) के आधे भाग में होती है। ('यतिः सर्वत्र पादान्ते—श्लोकार्धे तु विशेषतः।")

चरण या पादः—मात्रिक छन्दों को पढ़ते समय जहाँ रुकना पड़ता है, उसके पूर्व का समस्त पद एक चरण कहलाता है।

यथा—'**लखि श्याम लीजै, दुख टारि दीजै**'।

समा०—उपर्युक्त पद्य में 'लखि श्याम लीजै' और 'दुख टारि दीजै' ये दोनों चरण हैं, क्योंकि यहाँ पढ़ते वक्त ठहरना पड़ता है। कोई-कोई इसे पद, पाद अथवा चरण भी कहते हैं।

(४) मात्रा-गणना के नियम

(१) वर्णों का गुरुत्व या लघुत्व उनके उच्चारण पर निर्भर होता है। प्रत्येक वर्ण, जिसका उच्चारण ह्रस्व होता है, उसे लघुवर्ण कहते हैं तथा उस वर्ण की एक मात्रा गिनते हैं। यथा—

अ, इ, उ, ऋ ह्रस्व स्वर और तत्स्वरान्त व्यञ्जन (क, कि, कु और कृ इत्यादि ।) लघुवर्ण हैं । इसका चिह्न ऋजु रेखा (।) है ।

(२) जिस वर्ण के उच्चारण में ह्रस्व वर्णों से द्विगुणित समय लगता है, उसे दीर्घ या गुरु वर्ण कहते हैं । और ऐसे प्रत्येक दीर्घ वर्ण की दो मात्राएँ गिनते हैं । यथा—

आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, अं और अः दीर्घ स्वर तथा तत्स्वरान्त व्यञ्जन (का, की, कू, कॄ, के, कै, को, कौ, कं और कः इत्यादि ।) गुरू वर्ण हैं । इसका चिह्न वक्ररेखा (ऽ) है ।

'दीर्घं सानुस्वारं विसर्गसंमिश्रम् ।' (श्रुतिबोध)

अर्थात् सानुस्वार वर्ण एवं विसर्गसंमिश्रित वर्ण दीर्घ होते हैं । यथा—कं और कः इत्यादि ।

(३) **'सयुंक्ताद्यं दीर्घम्'** । (**श्रुतबोध**)

अर्थात् हिन्दी में मकार (म वर्ण) और हकार (ह वर्ण) को छोड़कर अन्य संयुक्ताक्षरों के आद्य वर्ण (पहिले वर्ण) की दो मात्राएँ गिनी जाती हैं । यदि संयुक्ताक्षर के पहले का वर्ण पहिले से ही दीर्घ हो तो भी उसकी दो ही मात्राएँ गिनी जायँगी । यथा—

'कुम्हार	तुम्हरि	धर्म	विक्रम	जन्म ।'
। ऽ ।	। । ।	ऽ ।	ऽ । ।	ऽ ।

(४) संयुक्ताक्षर के पूर्व का लघु अक्षर, जिस पर भार नहीं पड़ता, वह लघु ही रहता है । यथा—

'कन्हैया	जुन्हाई	सन्हाई	कन्हाइ ।'
। ऽ ऽ	। ऽ ऽ	। ऽ ।	। ऽ ।

(५) चन्द्रबिन्दु 'ँ' का ह्रस्व या दीर्घ वर्ण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

अर्थात् चन्द्रबिन्दुयुक्त वर्ण यदि ह्रस्व हुआ तो ह्रस्व ही रहेगा और यदि दीर्घ हुआ तो, दीर्घ ही रहेगा। यथा—

'चँद्वा आँख दाँत पँवार।'
I I S S I S I I S I

(६) 'विज्ञेयमक्षरं गुरु पादान्तस्थं विकल्पेन।' (श्रुतिबोध)
अर्थात् कभी-कभी चरणांत लघु वर्ण भी दीर्घ मान लिया जाता है।

(७) हलन्त अक्षर (क्, ख्, घ् आदि) के पूर्वाक्षर की दो मात्राएँ गिनी जाती हैं और हलन्ताक्षर की मात्रा नहीं गिनी जाती है। यथा—

'विद्वत् श्रीमत् सत् चित् परिषत्।'
S S S S S S I I S

(८) जब शब्दों का समास हो और उसमें दूसरे शब्द का प्रथम वर्ण संयुक्तवर्ण होता है तो वहाँ उसके पूर्ववर्ती लघुवर्ण को दीर्घ मान भी सकते हैं और नहीं भी। यथा—

'जन्म-स्थान धर्म-स्थविर जड़-स्थावर।'
S S S I S S I I I I S S I I

(५) छन्दों में व्यवहार्य संख्या

१ शशि, भू, ईश्वर, व्योम, नभ, रव, शशांक, और धरा आदि।
२ भुज, पक्ष, नेत्र, अहिजिह्वा, नदीतट और इनके पर्याय।
३ गुण, राम, अग्नि, ताप, काल, शिवनेत्र, वह्नि आदि।
४ वेद, वर्ण, फल, पाद, आश्रम, अवस्था, धाम और चरण।
५ बाण, तीर, अमृत, शिवमुख, कन्या, इंद्रिय, तत्त्व, यज्ञ आदि।
६ शास्त्र, ऋतु, रस, राग, वेदांग, अलिपद, ईति, कृतान्त।
७ तुरंग, अश्व, ऋषि, समुद्र, गिरि, स्वर, पाताल और लोक।
८ सिद्धि, वसु, अंग, अहि, दिग्गज और याम।

९ निधि, भक्ति, अंक, ग्रह, छिद्र (रन्ध्र) और नाड़ी।
१० दिशा, दिग्पाल, अवतार, दोष, दशा।
११ रुद्र, शिव और इनके पर्याय।
१२ आदित्य, सूर्य और इनके पर्याय।
१३ नदी, भागवत।
१४ मनु, विद्या, रत्न, भुवन, सूर्य-कला।
१५ तिथि।
१६ शृंगार, कला, संस्कार।
१७ पुराण, स्मृति, चन्द्रकला
२० नख
२५ प्रकृति
२८ नक्षत्र
३० मास-दिवस
३२ लक्षण, दाँत
३३ देवता
३६ रागिणी
४९ पवन
५६ भोग
६३ वर्णमाला
६४ कला
८४ योनि
१००० इन्द्रनेत्र, कमलदल, सूर्यकिरण और शेषफन।

सूचना—'अंकानां वामतो गतिः।' उक्त्यनुसार कविता में अंकों की गणना दाहिनी ओर से बाईं ओर करते हैं। यथा—

'कंदर्पशर-मुख-काव्यरस-भू को कियो ग्रंथावसान।'

में ग्रंथ समाप्ति का संवत् १९१५ वि० होगा। इसी प्रकार अन्य भी जानना चाहिये।

मात्रिक छन्दों की संख्या और उनकी वर्ग-संज्ञा

मात्रा-संख्या	वर्ग-संज्ञा	कुलभेद	मात्रा-संख्या	वर्गसंज्ञा	कुलभेद
१	चान्द्र	१	१७	महाशृंगारी	२५८४
२	पाक्षिक	२	१८	पौराणिक	४१८१
३	राम	३	१९	महापौराणिक	६७६५
४	वैदिक	५	२०	नाखिक	१०९४६
५	याज्ञिक	८	२१	त्रैलोक	१७७११
६	रासिक	१३	२२	महारौद्र	२८६५७
७	लौकिक	२१	२३	रौद्रार्क	४६३६८
८	वासव	३४	२४	मानवावतार	७५०२५
९	आंक	५५	२५	प्राकृतिक	१२१३९३
१०	अवतारी	८९	२६	महाभागवत	१९६४१८
११	रौद्र	१४४	२७	नाक्षत्रिक	३१७८११
१२	सौर	२३३	२८	यौगिक	५१४२२९
१३	भागवत	३७७	२९	महायौगिक	८३२०४०
१४	मानव	६१०	३०	महातैथिक	१३४६२६९
१५	तैथिक	९८७	३१	अश्वावतारी	२१७८३०९
१६	शृंगारी	१५९७	३२	लाक्षणिक	३५२४५७८

सूचना—आगे के छन्दों का विस्तार भी इसी प्रकार उसके दो पूर्व संख्याओं को जोड़कर निकाल लेना चाहिये, जैसा कि ऊपर दिखाया गया है।

वर्णिक छन्दों की संख्या और उनकी वर्ग-संज्ञा

वर्ण	वर्ग-संज्ञा	कुल-भेद	वर्ण	वर्ग-संज्ञा	कुल-भेद
१	उक्था	२	१४	शक्करी	१६३८४
२	अत्युक्था	४	१५	अति शक्करी	३२७६८
३	मध्या	८	१६	अष्टि	६५५३६
४	प्रतिष्ठा	१६	१७	अत्यष्टि	१३१०७२
५	सुप्रतिष्ठा	३२	१८	धृति	२६२१४४
६	गायत्री	६४	१९	अति धृति	५२४२८८
७	उष्णिक्	१२८	२०	कृति	१०४८५७६
८	अनुष्टुप्	२५६	२१	प्रकृति	२०९७१५२
९	बृहती	५१२	२२	आकृति	४१९४३०४
१०	पंक्ति	१०२४	२३	विकृति	८३८८६०८
११	त्रिष्टुप्	२०४८	२४	संकृति	१६७७७२१६
१२	जगती	४०९६	२५	अतिकृति	३३५५४४३२
१३	अति जगती	८१९२	२६	उत्कृति	६७१०८८६४

सूचना—२६ वर्णों से आगे दण्डकवृत्त हैं, उनका भी इसी प्रकार दूना दूना करके निकाल लेना चाहिये।

(छन्दः परिमलकार)

[१] मात्रिक सम साधारण छन्द

हम इस प्रकरण में केवल प्रयोग में आने वाले प्रचलित छन्दों के ही बारे में लिखेंगे। अप्रचलित छन्दों का हम केवल नाम करण मात्र कर देंगे।

विदित हो कि १ मात्रा से लेकर ११ मात्राओं तक के छन्द अप्रचलित हैं।

सौर (१२ मात्राओं के छन्द २३३)

(१) **तोमर :**—इसके प्रत्येक चरण में १२-१२ मात्रा होती है और अंत में गुरुलघु होता है। यथा—

"तब चलै बाण कराल। काँपती सैना विशाल॥
रुधिर से भू का भाल। रंग दीनो रंग लाल॥"

(२) **ताण्डीव**—प्रत्येक चरण में १२-१२ मात्रा और अंत में एक लघु, इसका आदि का वर्ण भी लघु होता है।

(३) **लीला**—प्रत्येक चरण में १२-१२ मात्रा। अंत में लघुगुरुलघु होता है।

(४) **नित**—प्रत्येक चरण में १२-१२ मात्रा। अंत में लघुगुरु होता है।

भागवत (१३ मात्रा के छन्द ३७७)

(१) **उल्लाला**—इसके प्रत्येक चरण में १३-१३ मात्राएँ होती हैं। अन्त में लघुगुरु का कोई विशेष नियम नहीं है। इसका अन्य नाम 'चन्द्रमणि' भी है।

(२) **कज्जल**—प्रत्येक चरण में १३ मात्रा और चरणांत में गुरुलघु।

मानव (१४ मात्राओं के छन्द ६१०)

(१) **प्रतिभा**—प्रत्येक चरण में १४ मात्रा। आदि का एकवर्ण लघु होता है।

(२) **मधुमालती**—प्रत्येक चरण में ७, ७ मात्राओं की यति से १४ मात्राएँ। अंत में (ऽ।ऽ)

(३) **सुलक्षण**—प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ और अन्त में गुरुलघु।

तैथिक (१५ मात्राओं के छन्द ९८७)

(१) **चौपई**—प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ और अंत में गुरुलघु होता है। यथा—

"सुरीले ढीले अधरों बीच। अधूरा उसका लचका गान॥
विकच बचपन को, मन को खींच। योग्य बनवाया था उपमान॥"

(२) **भुजंगिनी**—प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ और अंत में लघुगुरुलघु।

शृंगारी (१६ मात्राओं के छन्द १५९७)

(१) पद्धरि—प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ तथा चरणांत में लघुगुरुलघु होता है। यथा—

"है तीनलोक आनन्ददाय। सुर नर खग पूजन आय पाय॥
जिस नाम लेत सब हरतताप। भव भव के नाशैं सकल पाप॥"

(२) पज्झटिका—प्रत्येक चरण में १६ मात्राएं होती हैं। प्रत्येक ८ वीं मात्रा के पश्चात् एक गुरु फिर प्रत्येक चार मात्रा के पश्चात् एक गुरु वर्ण रख देने से यह छन्द बनता है। चरण में कहीं भी जगण (। ऽ ।) न पड़ना चाहिये। यथा—

"तेरी लाल दिशा ही में मां। चन्द्र सूर्य चिरकाल उगें॥
तेरे आंगन में ही मोती। हिलमिल तेरे हंस चुगें॥"

चौपाई—प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। किन्तु चरणांत में जगण (। ऽ ।) या तगण (ऽ ऽ ।) नहीं होना चाहिये। यथा—

"अमर नाग किन्नर दिसिपाला।
चित्रकूट आये तेहिकाला॥
राम प्रनाम कीन्ह सब काहू।
मुदित देव लहि लोचन लाहू॥"

महापौराणिक (१९ मात्राओं के छन्द ६७६५)

(१) पीयूषवर्ष—प्रत्येक चरण में १९ मात्राएँ होती हैं। ३, ७, १० और १७वीं मात्रा लघु होना चाहिये। यथा—

"हैं जनम लेते जगह में एक ही। एक ही पौधा उन्हे है पालता॥
रात में उनपर चमकता चाँद भी। एक सी ही चाँदनी है डालता॥"

(२) तमाल—प्रत्येक चरण में १९ मात्राएँ व चरणांत में गुरुलघु होता है। यथा—

"मिथ्या तपन मिटावन चन्द्र समान।
मोहि तिमिर वारन को कारन भान॥

काल कषाय मिटावन मेघ मुनीश।
द्यानत सम्यक रतन त्रय गुन ईश ॥"

(३) **सुमेरु**—प्रत्येक चरण में १९ मात्राएँ होती हैं तथा १२-७ पे या १०-९ मात्रा पर यति होती है। आदि का वर्ण लघु होता है तथा चरणांत में यगण (। ऽ ऽ) होना चाहिये। यथा—

"उदासी घोर निशा में छा रही थी।
हवा भी काँपती थर्रा रही थी॥
बिकल थी जाह्नवी की वारि धारा।
पटककर सिर गिराती थी कगारा॥"

महादैशिक (२० मात्राओं के छन्द १०९४६)

(१) **शास्त्र** - प्रत्येक चरण में २० मात्राएँ व चरणांत में गुरु लघु।

(२) **मञ्जु तिलका**—प्रत्येक चरण में १२-८ मात्रा की यति से २० मात्राएँ व अंत में लघु गुरु लघु (।ऽ।) होता है।

(३) **हंसगति**—११-९ मात्रा की यति से कुल २० मात्राएँ होती है। यथा—

"भक्ति हिये में धार, बलवीर की तू।
तज मन सकल विकार, हरै परपीर तू॥
भजमन तू गोपाल, कैटभ मधुकाल।
केशी-कंस घातक, जय हो गोपाल॥"

महारौद्र (२२ मात्राओं के छंद २८६५७)

(१) **राधिका (लावनी)**—इसके प्रत्येक चरण में १३-९ मात्राओं की यति से कुल २२ मात्राएँ होती हैं। लघु गुरु का कोई विशेष नियम नहीं है। यथा—

"तड़फ तड़फ माली अश्रु, धारा बहाता।
मलिनमलिनिया का दुख, देखा न जाता॥

निठुर फल मिला क्या व्यर्थ, पीड़ा दिये से ।
इस लतिका की गोद, सूनी किये से ॥"

(२) कुण्डल—१२-१० मात्राओं की यति के कुल २२ मात्राएँ होती न । चरणांत में दो गुरु होना आवश्यक है ।

रौद्रार्क (२३ मात्राओं के छन्द ४६३६८)

(३) उपमान (दृढ़पद)—१३-१० मात्राओं की यति से प्रत्येक चरण में २३ मात्राएँ होती है व चरणांत में एक दीर्घ वर्ण होता है ।

(२) सुजाव—१४-६ की यति से प्रत्येक चरण में मात्राएँ होती हैं । अंत में गुरु लघु होता है ।

मानवावतार (२४ मात्राओं के छन्द ७५०२५)

(१) रोला—११-१३ मात्रा की यति से प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती हैं । गुरु लघु का कोई विशेष नियम नहीं है । यथा—

"गिनै नींद की स्वाँस, बास बसि तेरे डेरे ।
लियै जात बनि मीत, माल ये साँझ सबेरे ॥
बरनै दीन दयाल, न चीन्हत है तू ताही ।
जाग जाग रे जाग, इतै कित सोवत राही ॥"

(२) काव्य—११-१३ मात्रा की यति से प्रत्येक चरण में २४ मात्राएँ होती है । प्रत्येक चरण की ११ वीं मात्रा लघु होना चाहिये । यथा—

"ऊँचे ऊँचे कलश, दूर ही सों अति भ्राजत ।
चन्द्र सूर की किरन, परैं दुनि दुति चमकत ॥
अमृत घट सिर लिये मनहुँ गृह देवी बाढ़ी ।
जात्रीगन की मंगलमय छबि दीखत बाढ़ी ॥"

(३) रूपमाला—इसके प्रत्येक चरण में १४ व १० मात्राओं की यति से कुल २४ मात्राएँ होती हैं । अंत में गुरु लघु होता है । यथा—

"जोरि कर मुनि पाय पंकज, करी दण्ड प्रणाम ।
पूजिवे को कुसुम लावैं, लही आयसु राम ॥"

(४) **दिग्पाल**—इसके प्रत्येक चरण में १२-१२ मात्रा की यति से २४ मात्राएँ होती हैं। इसी का अन्य नाम 'मृदुगति' भी है। यथा—

"एक समय वह भी था, प्यारी जब तू आती।
हर्ष हास्य आमोद मौज आनन्द बढ़ाती॥
होते घर घर बन बन, मंगलाचार बधाई।
चाव चाव से होती, थी तेरी पहुनाई॥"

महाभागवत (२६ मात्राओं के छन्द १९६४१८)

(१) विष्णुपद—१६-१० मात्रा की यति से प्रत्येक चरण में २६ मात्राएँ होती हैं। अंतिम वर्ण गुरु होता है।

(२) **झूलना**—इस छन्द में ७, ७, ७ और ५ के विश्राम से २६ मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु लघु होता है। यथा—

"हरि राम विभु, पावन परम, गोकुल बसत, मनमान।
छबिधाम सुर, मारन असुर, मूरति मयन, बलवान॥"

(३) **सीरतीका**—इसके प्रत्येक चरण में १४-१२ की यति से कुल २६ मात्राएँ होती हैं और अंत में लघु गुरु होता है। कोई कोई इसकी २, ३, १०, १७ और २४ वीं मात्रा लघु लिखने का भी आदेश करते हैं। यथा—

"पुष्प नभ उद्यान का सबसे, अनोखा अति भला।
क्या हुआ मुरझा गया था, नोचकर उसको मला॥
सुख सुना है इस जगत् में, बस दुखों का ढेर है।
चार दिन की चाँदनी है, फिर वही अन्धेर है॥"

नाक्षत्रिक (२७ मात्राओं के छन्द ३१७८११)

(१) सरसी—(कबीर)—१६ और ११ मात्रा की यति से प्रत्येक चरण में २७ मात्राएँ होती हैं और अंत में एक गुरु होता है ? 'भानु' कवि के मत से इसके चरणांत में गुरु लघु होता है ! यथा—

"जग में अचर सचर जितने हैं, सारे कर्म निरत हैं।
धुन है एक न एक सभी को, सबके निश्चित व्रत हैं॥

जीवन भर आतप सह बसुधा, पर छाया करता है।
तुच्छपत्र की भी स्वकर्म में, कैसी तत्परता है॥"

यौगिक (२८ मात्राओं के छन्द ५१४२२६)

(१) हरिगीतिका—इसके प्रत्येक चरण में १६-१२ मात्रा की यति से कुल २८ मात्राएँ होती हैं तथा अंत में लघुगुरु होता है। यथा—

"दीपक उदोत सजोत जगमग, सुगुरुपद पूजौं सदा।
तमनाश ज्ञान उजास स्वामी, मोहि मोह न हो कदा॥
भव भोग तन वैराग्य धार, निहार शिव तप तपत हैं।
तिहुँ जगतनाथ अराधु साधु सु,-पूज नित गुन जपत हैं॥"

(२) सार—इसके प्रत्येक चरण में १६-१२ मात्रा की यति से २८ मात्राएँ होती हैं व चरणान्त में दो दीर्घवर्ण होते हैं। कोई-कोई इसे 'ललितपद' भी कहते हैं।

यथा—"प्रात समय रघुवीर जगावैं, कौशिल्या हितकारी।
उठो लालजी भोर भयो है, सुर नर मुनि हितकारी॥"

महायौगिक (२९ मात्राओं के छन्द ८३२०४०)

(१) मरहठा—इसके प्रत्येक चरण में १०—८+११ मात्राओं की यति से कुछ २९ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरुलघु होता है! यथा—

"दिसिवसु शिव यति धरि, अंत ग्वाल करि, रचिय मरहठा छंद।
भजुमनु शिवशंकर, तू निसिवासर, तब लह अति आनंद॥
निरखत मदनहि जिन, कदन कियौ छिन, रतिहि दियौ वरदान।
मिलि है द्वापर में, शम्बर घर में, प्रद्युम्न सुव पति आन॥"

(२) मरहटा माधवी—इसके प्रत्येक चरण में ११-८-१० मात्राओं की यति से कुल २९ मात्राएँ होती हैं तथा चरणान्त में लघुगुरु होता है। यथा—

"शिववसु दिसि जहँ कला, लगै अति भला, मरहटामाधवी।
अति कोमल चित सदा, सकल कामदा, चरित किय मानवी॥
दस अवतारहिं धरै, अभय सुख करै, धर्म किय थापना।
अस प्रभुवर नित भजो, कुमति को तजो, रहै यम त्रास ना॥"

महातैथिक (३० मात्राओं के छन्द १३४६२६९)

(१) चवपैया—इसके प्रत्येक चरण में १०-८-१२ वीं मात्राओं की यति से कुल ३० मात्राएँ होती हैं। चरणान्त में एक सगण (। । ऽ) और एक दीर्घ वर्ण होता है।

यथा—"—भये प्रकट कृपाला, दीनदयाला, कौशल्या हितकारी।
(। । ऽ ऽ)

हर्षित महतारी, मुनिमनहारी, अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामा, तनु घनश्यामा, निज आयुध भुजचारि।
भूषण वनमाला, नयन विशाला, शोभासिंधु खरारि॥"

(२) रुचिरा—इसके प्रत्येक चरण में १६-१४ मात्राओं की यति से ३० मात्राएँ होती हैं तथा चरणान्त में एक दीर्घ वर्ण होता है। यथा—

"कैदी कहते अरे मूर्ख क्यों, ममता थी मंदिर पर ही?
पास वहीं मसजिद भी तो थी, दूर न था गिरजाघर भी॥
कैसे उनको समझाता मैं, वहाँ गया था क्या सुख से।
देवी का प्रसाद चाहा था, बेटी ने अपने मुख से॥"

(३) ताटंक—प्रत्येक चरण में १६ और १४ मात्राओं की यति से ३० मात्राएँ होती हैं और अन्त में एक मगण (ऽ ऽ ऽ) या तीन दीर्घ-वर्ण होते हैं। यथा—

"तड़फा करके श्रमजीवों को, अति चूस चूस किसानों को।
कहलाते सरसेठ सवाई, भरकर आज खजानों को॥
'शान्ति' धान्य उत्पन्न करें जो, वो तो तरसे दानों को।
जो ऐश करें महलों में वो, दावत दें महमानों को॥"

अश्वावतारी (३१ मात्राओं के छन्द २१७८३०९)

(१) वीर—यह छन्द ३१ मात्रा का होता है, १६ वीं और १५ मात्राओं पर यति होती है। प्रत्येक चरण के अन्त में गुरुलघु होता है।

इसे 'मात्रिक सवैया' और 'आल्हा छंद' भी कहते हैं, क्योंकि यह सवैये

की भाँति पढ़ा जा सकता है। परन्तु सवैये वर्णवृत्तों में पाये जाते हैं और यह मात्रिक वृत्तों में, इसलिए इसे 'मात्रिक सवैया' कहते हैं और 'आल्हा छन्द' इसलिए कहते हैं कि सम्पूर्ण 'आल्हा-काव्य' इसी छन्द में लिखा गया है। यथा-

"हे सुरेश तेरे प्रसाद से, कुसुमायुध ही मैं इस काल।
साथ एक ऋतुपति को लेकर, और प्रपंच यहीं सब डाल॥
धैर्य पिनाकपाणि हर का भी स्खलित करूँ देवार्थ।
और धनुष धरनेवाले सब, मेरे सन्मुख तुच्छ पदार्थ॥"

लाक्षणिक (३२ मात्राओं के छन्द ३५२४५७८)

(१) त्रिभङ्गी—इसके प्रत्येक चरण में १०-८-८ और ६ ठी मात्रा की यति से ३२ मात्राएँ होती हैं और अन्त में एक गुरुवर्ण होता है। इसी को 'शुद्धध्वनि' भी कहते हैं। यथा—

"क्षीरोदधि गंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा, सुखसंगा।
भरि कंचनझारि, धार निकारी, तृषानिवारी, हितचंगा॥
तीर्थंकर की धुनि, गणधर ने सुनि, अंगरचै चुनि, ज्ञानमई।
सो जिनवरबाणी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन नामी, पूज्यभई॥"

(२) दण्डकला—इसके प्रत्येक चरण में १०-८-१४ की यति से ३२ मात्राएं होती हैं व अन्त में एक सगण (।।ऽ) होता है। यथा—

"जो तीरथ जावै, पाप मिटावै, ध्यावै गावै भगति करै।
ताको जस कहिये, संपति लहिये, गिरि के गुण को बुध उचरैं॥"

(३) दुर्मिल—इसके प्रत्येक चरण में १०-८-१४ मात्रा की यति से ३२ मात्राएँ होती हैं। अन्त में दो लघु और एक मगण होता है। यथा—

"मिथ्यात महातम, छाय रह्यो हम, स्वभव परिणति नहीं सूझै।
(।।ऽऽऽ)
इहि कारण पाके, दीप सजाके, प्रभुवर हम तुझको पूजै॥
वसु कोटिसु छप्पन, लाख सतावन, सहस चार सत इक्यासी।
जिनगेह अकीर्तिम, तिहुँजग भीतर, लै पद पूजत अविनासी॥"

[२] *मात्रिक सम दण्डक*

(१) **करखा**—इसके प्रत्येक चरण में ८-१२-८ और ६ की यति से कुल ३७ मात्राएँ होती हैं और अन्त में एक यगण (।ऽऽ) होता है। यथा—

"भाव निवारण, भविक मन आनंदनो, रिषभजिनेश्वर, तुव चरण वंदौ।
तुम चन्द्रवदन, चन्द्रपुर परमेश्वरो, चन्द्रजिनेश्वर, तुव चरण वंदौ॥
विवेक सागर, भव्यकमलविकासनो, नेमिजिनेश्वर, तुव चरण वंदौ।
सिद्धार्थसुवन, आवागमन निवारो, वीरजिनेश्वर, तुव चरण वंदौ॥"

[३] *मात्रिक अर्द्धसम छन्द*

जिन छन्दों के प्रथम और तृतीय और चतुर्थ चरणों की मात्रा एक समान हो, उसे मात्रिक अर्द्धसम छन्द कहते हैं।

इन छन्दों के प्रस्तार अंक जानने की रीति यह है कि किसी भी छन्द के प्रथम और द्वितीय चरण की मात्रा संख्याओं का परस्पर गुणा करलो, जो आवे वही उत्तर होगा।

(१) **बरवै (कुल भेद ८४)**—इसके सम चरणों में ७ और विषम चरणों १२ मात्राएँ होती हैं व अन्त में एक गुरुलघु (ऽ।) होता है। यथा—

"बंध्यावहुँ सोच विमोचन, गिरिजा ईस।
नागाभरण, त्रिलोचन, सुरसरि सीस॥"

(२) **अति बरवैः (कुल भेद १०८)**—इसके विषम चरणों में १२ मात्रा एवम् समचरणों में ६ मात्राएँ होती हैं और चरणान्त में गुरुलघु होता है। यथा—

"ध्यावहुँ सोच विमोचन, गिरितनुजा ईश।
नागाभरण, त्रिलोचन, सुरसरिता शीश॥"

(३) **दोहा (कुलभेद १४३)**—इसके पहिले और तीसरे चरण में १३ और दूसरे तथा चौथे चरण में ११ मात्राएँ होती हैं। इसके पहिले और तीसरे चरण के अन्त में जगण (।ऽ।) नहीं पड़ना चाहिये।' तथा इसके सम चरणान्त में गुरुलघु होना परमावश्यक है। यथा—

"तंत्रीनाद कवित्तरस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग॥"

(४) **सोरठा**—दोहे का बिलकुल उल्टा होता है। यथा—

"सरस राग रति रंग, तंत्रीनाद कवित्तरस।
जे बूड़े सब अंग, अनबूड़े बूड़े तरे॥"

(५) **हरिपद**—इसके पहिले और तीसरे चरण में १६ तथा दूसरे और चौथे चरण में ११ मात्राएँ होती हैं व अंत में गुरुलघु होता है। यथा—

"प्रभुवर तुम त्रिभुवन के राजा, कर्म देय दुख मोहि।
नित तुम पदपंकज पूजत हैं, हम पै करुणा होहि॥"

(६) **उल्लाल**—इसके विषम चरणों में १५ और सम चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं। यथा—

"कै बालगुड़ी नभ में उड़ी, सोहत इत उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोइ, ब्रजरमनी जल आवती॥"

(७) **घत्तानन्द**—इसके विषम चरणों में ११-७ मात्राओं की यति से १८ मात्रा तथा सम चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं, अन्त में नगण (।।।) होता है। यथा—

"जयतु नेमिनाथ रवि, तिमिरनाशन, कर्मदलन तारण तरण।
कामसेना वशकरण, भक्तवत्सल, जयतु सिद्ध अशरण शरण॥"

(८) **घत्ता**—इसके विषम चरणों में १८ मात्राएँ तथा सम चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं, अन्त में नगण (।।।) होता है। यथा—

"तुम कर्मघाता अपवर्गदाता, सिद्धार्थ सुवन शिवकरण।
मोहि अनाथ जानि सनाथ कीजै, देय प्रभुवर चरण शरण॥"

[४] *मात्रिक विषम छन्द*

जिसके प्रत्येक चरण में असमान मात्राएँ हों, उसे मात्रिक विषम छन्द कहते हैं! चार चरणों से लेकर इसमें ६ चरण तक होते हैं।

इन छन्दों के प्रस्तार अंक जानने के लिए प्रत्येक चरणों की मात्राओं का परस्पर गुणन करना चाहिए, जो आवे वही उत्तर होगा।

(१) **छप्पय (कुल भेद ७७६१३२२५)**—इस छन्द में ६ चरण होते हैं; जिसमें पहले चार पद रोले के तथा दो पद उल्लाल के होते हैं। यथा—

"कूजत कहुँ कलहंस कहूँ, मज्जत पारावत।
कहुँ कारंडव उड़त कहूँ, जल कुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ, बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुँ पियत, कहुँ भ्रमरावलि गावत॥
कहुँ तट पर नाचत मोर, बहु रोर विविध पंछीकरत।
जलपान न्हान कर सुख भरे, तट शोभा सब जिय धरत॥"

(२) **कुण्डलिया**—इस छन्द में भी ६ पद होते हैं, प्रत्येक पद में २४ मात्राएँ होती हैं। पहिले दो पद दोहे के और पश्चात् चार पद रोले के होते हैं। दोहे का चौथा चरण रोले का प्रथम चरण और दोहे का आदि शब्द रोले का अंतिम शब्द होता है। यथा—

"टूटै नखरद केहरी, वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आइकै, यह दुख दियो बढ़ाय॥ (दोहा)
यह दुख दियो बढ़ाय, चहूँ दिशि जम्बुक गाजैं।
ससक लोमरी आदि, स्वतन्त्र करैं सब राजैं॥
बरनै दीन दयाल, हरिन बिहरैं सुख लूटैं।
पंगु भयो मृगराज, आज, नखरद के टूटै॥" (रोला)

(३) **अमरगीत**—इसमें चार पद, दो छन्दों से मिलकर बनाये जाते हैं, जिनमें से दो पद रोला या उल्लाल के होते हैं और दो पद दोहे के होते हैं तथा अन्त में १० मात्राएँ टेक के रूप में रहती हैं। यथा—

"धन्य धन्य हे भीमसिंह! प्रण के अनुरागी।
सज्जन, सत्यप्रतिज्ञ, विज्ञ, त्यागी, बड़भागी॥ (रोला)
धन्य आपका प्रण तथा, आत्मत्याग आदर्श।
धन्य धर्म दृढ़ता तथा, भ्रातृ-प्रेम-उत्कर्ष॥ (दोहा)
धन्य तव वीरता॥२६॥

(४) **अमृतध्वनि**—इस छंद का प्रयोग केवल वीर रस में ही होता है। इसके ६ पद होते हैं। प्रत्येक पद में २४ मात्राएँ होती हैं। पहिले के दो पद

दोहे के होते हैं, शेष चार पदों में ८-८ मात्रा की यति से सानुप्रास रचना की जाती है।

दोहे का चौथा चरण इस छन्द का तृतीय चरण होता है तथा दोहे का आद्यशब्द इस छन्द का अंतिम शब्द होता है। यथा—

"दिल्लिय दलन दबायकरि, सिवसरजा निरसंक।
लूटि लियो सूरति सहर, बंकक्करि अति डंक॥ (दोहा)
बंकक्करि अति डंकक्करि अरु, संकक्कुलि खल।
सोचच्चकित भरोचच्चलिय, विमोचच्चखजल॥
तट्ठट्ठइमन कट्ठट्ठिक सोइ, रट्ठट्ठिट्ठिल्लिय।
सद्दद्दि सिदिसि भद्दद्दबि भइ, रद्दद्दिल्लिय॥"

[५] समवर्णिक वृत्त

इस प्रकरण में हम प्रसिद्ध प्रसिद्ध वर्णिक वृत्तों का ही वर्णन करेंगे, क्योंकि इनकी संख्या अप्रमेय है, सुतरां हम ऐसा ही करेंगे। प्रचलित छन्दों के उदाहरण भी दिये गये हैं और अप्रचलित छन्द जो कभी-कभी प्रयोग में आते हैं, उनका लक्षणमात्र दे दिया गया है!

(गायत्री षडाक्षरावृत्ति ६४)

(१) विद्युल्लेखा (शेषराज)—इसके प्रत्येक चरण में दो मगण होते हैं। यथा—

"मां मांगो मैं दाना। काहे पूछो ग्वाला॥
मानो तेरी एरे। ग्वाला शिष्यै तेरे॥"

(२) विमोह (द्वियोधा)—इसके प्रत्येक चरण में १ रगण औ १ सगण होता है।

यथा—"ब्रह्म को जानिये। वेद को मानिये॥
धर्म को धारिये। मोह को मारिये॥"

वाणी भूषणकार ने इसे 'वल्लरी' नाम दिया है।

(३) तिलका—दो सगण से यह छन्द बनता है। यथा—

"अमलं अचलं। अकलं अकुलं॥
अछलं असलं। अरलं अतुलं॥"

रविदास के मत से यही 'डिल्ला' और 'भद्र' वृत्त हैं।

(४) शशिवदना—एक नगण और १ यगण से यह छन्द बनता है। चन्दरसा, चतुर्वर्णा इसके नामान्तर हैं। छन्द कौस्तुभकार ने इसे 'चतुरंसा' और गरुड़पुराणकार ने 'बालललिता' नाम दिया है। यथा—

"कवि कविता औ। सुरसरिता को॥
विभु सविता को। जग पहिचाने॥"

अनुष्टुप् (अष्टाक्षरावृत्ति २५६)

(१) विद्युन्माला—दो मगण और दो गुरु से यह वृत्त बनता है। 'विद्युल्लेखा' इसका नामान्तर है!

(२) माणवकाक्रीडित—भगण, नगण और लघुगुरु से यह छन्द बनता है। छन्दः कौस्तुभ व वृत्तरत्नाकर में इसे 'माणवक' नाम दिया गया है।

(३) चित्रपदा—दो भगण और दो गुरू से मिलकर यह छन्द बनता है। वितान इसका नामान्तर है। यथा—

('वितानमन्यत्' दि० सू० ५।८)

"अंगद यों सुनि बानी। चित्त महा रिस आनी॥
ठेलि के लोग अनैसे। जाइ सभा में बैसे॥"

(४) प्रमाणिका (नगस्वरूपिणी)—जगण, रगण तथा लघुगुरु से यह वृत्त बनता है। यथा—

"नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं॥
भजामिते पदाम्बुजं। अकामि नां स्वधामदं॥"

(५) मल्लिका—रगण, जगण गुरु और लघु। यथा—

"गूँजने लगे मलिन्द। कूजत विहंग वृन्द॥
हो गया सुगंधवात। मल्लिका खिली प्रभात॥"

बृहति (नवाक्षरावृत्ति ५१२)

(१) **मणिमध्य**—भगण, मगण और सगण। 'श्रुतबोधकार' ने इसको 'मणिबन्ध' नाम दिया है।

(२) **भुजगशिशुसृता**—दो नगण और एक भगण। छन्दः कौस्तुभादि में इसी छंद के 'भुजंगशिशुभृता, भुजगशिशुयुता, भुजगशिशुवृता भुजग-शिशुसुता, आदि नाम दिये गए हैं।

'गरुड़पुराण' में इसी को 'शिशुभृता' छन्द लिखा है (नौ मः शिशुभृता भवेत्।' १।२०६।५)

यथा—"**नमन करत हूँ श्याम। भजन करत हूँ श्याम॥**
बसियत मम आकुता। सिरजनकर अप्लूता॥"

(३) **हलमुखी**—रगण, नगण और सगण।

पंक्ति (दशाक्षरावृत्ति २०२४)

(१) **मनोरमा**—नगण, रगण, जगण और १ गुरु। यथा—

"**नर जो गोप वेश श्यामहीं। भजत नित्य छांड़ि कामहीं॥**
सहित राधिका मनोरमा। लहत मुक्ति, पाप हों क्षमा॥"

(२) **अमृतगति**—नगण, जगण, नगण और १ गुरु। त्वरितगति, अमृत तिलका, अमृतगतिका इत्यादि इसके नामान्तर हैं। कृष्णराज ने इसे ही 'कुलटा' नाम दिया है (कुलटा स्यान्नजनगापंचभिः पंचभिर्यतिः।) यथा—

"**करत प्रणाम भगवता। नमत भुजंग बिलसिता॥**
लड़ड महान इतउता। लँघिड जवान परवता॥"

त्रिष्टुप् (एकादशाक्षरावृत्ति २०४८)

(१) **भ्रमरविलसित**—मगण, भगण, नगण, लघु और गुरु ४, ७ पर यति। यथा—

"**मैं भीनी ला, गुण गुण मन में। जैहों माधो, चरण शरण में॥**
फूल्ले वल्ली, भ्रमर विलसिता। पावै शोभा, अलि सह अमिता॥"

(२) **रथोद्धता**—रगण, नगण, रगण, १ लघु और १ गुरु वर्ण।

यथा—"कौशलेन्द्र पदकंज मंजुलौ ।
कौमलांबुज महेश वंदितौ ॥
जानकी कर सरोज लालितौ ।
चिन्तकस्थ मनभृंग , संगिनौ ॥

(३) दोधक—३ भगण और २ गुरु से यह वृत्त बनता है। वाणी-भूषणकार ने इसी को 'बन्धु' नाम दिया है। यथा—

"शांति जिनं शशि निर्मल वक्त्रं ।
शीलगुण व्रत संयम पात्रं ॥
अष्ट शतार्चित लक्षण गात्रं ।
नौमि जिनोत्तम्बुज नेत्रं ॥"

(४) उपस्थित (शिखंडित)—जगण, सगण, तगण, और दो गुरुवर्ण। यथा—

"जु संत गण की, सत्कीर्ति गावै ।
त्रिताप जग के सारे भगावै ॥
सु संग तिनको है मोदकारी ।
उपस्थित तहाँ संपत्तिसारी ॥"

(५) इन्द्रवज्रा—दो तगण, एक जगण, और दो गुरु वर्ण। यथा—

"संपूजकों को प्रतिपालकों को ।
यतीन को औ यतिनायकों को ॥
राजा प्रजा राष्ट्र सुदेश को ले ।
कीजे सुखी, हे जिन ! शांति को दो ॥"

(६) उपेन्द्रवज्रा—जगण, तगण, जगण, और दो गुरु वर्ण। यथा—

"अनेकमानी मति दीन मारे। मिटा दिये भोग विलास सारे ॥
कहाँ न आई आकुलीनता है। उपेन्द्रवज्रा यह दीनता है ॥"

सूचना :—'आद्यन्तावुपजातयः' । छ० शा० ॥६।१७॥

उपेन्द्रवज्रा और इन्द्रवज्रा के संयोग से १४ वृत्त बनते हैं, जिन्हें 'उपजाति' कहते हैं। वे इस प्रकार हैं :—

(१) **कीर्ति**—इसका प्रथम चरण उपेन्द्रवज्रा का और शेष त्रय चरण इन्द्रवज्रा के होते हैं ।

(२) **वाणी**--इसके प्रथम, तृतीय व चतुर्थ चरण इन्द्रवज्रा के और द्वितीय चरण उपेन्द्रवज्रा का होता है ।

(३) **माला**—इसके प्रथम द्वितीय चरण उपेन्द्रवज्रा के और तृतीय-चतुर्थ चरण इन्द्रवज्रा के होते हैं ।

(४) **शाला**—इसके प्रथम, द्वितीय व चतुर्थ चरण इन्द्रवज्रा के और द्वितीय चरण उपेन्द्रवज्रा का होता है । यथा—

"साहित्य संगीत कला विहीनः । साक्षात्पशुः पुच्छ विषाण हीनः ॥
तृणन्न खादनपि जीवमान । स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥"

(५) **हंसी**—इसके विषम चरण उपेन्द्रवज्रा के और समचरण इन्द्रवज्रा के होते हैं । 'विपरीताख्यानिकी......' (पि० सू० ५।३८) तदनुसार इस उपजाति का नाम 'विपरीताख्यानिकी' भी है ।

(६) **माया**—इसके प्रथम, द्वितीय व तृतीय चरण उपेन्द्रवज्रा के और चतुर्थ चरण इन्द्रवज्रा के होते हैं ।

(७) **जाया**—इसका प्रथम चरण इन्द्रवज्रा का और शेष चरणत्रय उपेन्द्रवज्रा के होते हैं ।

(८) **बाला**—इसके प्रथम के तीन चरण इन्द्रवज्रा के और अंतिम चतुर्थ चरण उपेन्द्रवज्रा का होता है ।

(९) **आर्द्रा**—इसका प्रथम चरण व चतुर्थचरण उपेन्द्रवज्रा का और द्वितीय व तृतीय चरण इन्द्रवज्रा के होते हैं ।

(१०) **भद्रा**—इसके विषम चरण इन्द्रवज्रा के और समचरण उपेन्द्रवज्रा के होते हैं । 'आख्यानिकी.........' (पिं० सू० ५।३७) के अनुसार इसका नाम 'आख्यानिकी' भी है । यथा—

"सद्धर्म का मार्ग तुम्हीं बताते । तुम्हीं अघों से हमको बचाते ॥
हैं ग्रन्थ विद्वान् तुम्हीं बनाते । तुम्हीं दुखों से हमको छुड़ाते ॥"

(११ प्रेमा—इसका तृतीय चरण इन्द्रवज्रा का और शेष चरणत्रय उपेन्द्रवज्रा के होते हैं। यथा—

"अनन्त रत्नप्रभवस्य यस्य। हिमं न सौभाग्य विलोपि जातम्॥
एकोहि दोषो गुणसंनिपाते। निमज्ज-तीन्दोः किरणेष्विव वांक॥"

(कुमार संभव १।३)

(११) **रामा**—इसके प्रथम द्वितीय चरण इन्द्रवज्रा के तथा तृतीय और चतुर्थ चरण उपेन्द्रवज्रा के होते हैं। यथा—

"कपूर गौरं करुणावतारं। संसार सारं भुजगेन्द्रहारं॥
सदा (व) संतं हृदयारविन्दे। भवं भवानी सहितं नमामि॥"

समा०—यहाँ चतुर्थ चरण में 'विशेयमक्षरं गुरूं पादान्तस्थं विकल्पेन' इत्यनुसार 'मि' वर्ण गुरू समझना चाहिये।

(१३) **ऋद्धि**—इसका द्वितीय चरण इन्द्रवज्रा का और शेष चरणत्रय उपेन्द्रवज्रा के होते हैं।

(१४) **बुद्धि**—इसका प्रथम चरण इन्द्रवज्रा का और शेष चरणत्रय उपेन्द्रवज्रा के होते हैं।

जगति (द्वादशाक्षराणां वृत्ति ४०९६)

(१) **वंशस्था**—(**छां० शा० ॥६।२८॥**)—जगण, तगण, जगण और रगण से यह वृत्त बनता है। छन्दोमंजरी आदि में इस छन्द का नाम 'वंशस्थ-विलम्' दिया गया है? यथा—

"तपीजपी विप्रनि छिप्र ही हरौं।
अदेवद्वेषी सब देव संहरौं॥
सिया न देहों यह नेम जी धरौं।
अमानुषी भूमि अवानरी करौं॥"

(२) **इन्द्रवंशा**—इसमें दो तगण, एक जगण और १ रगण होते हैं। यथा-

"ताराज ताराज जभान राज भा। प्राचार्य सौराष्ट्र स्थानवल्लभा।
पद्मा व तारा दुरगावती विभा। फैली हुई संसृति में लाभदा॥"

सूचना—इन्द्रवंशा और वंशस्था के संयोग से १४ वृत्त बनते हैं, जिन्हें 'उपजाति' कहते हैं।

नीचे उनकी प्रस्तार संख्या दी गई है। गुरु (ऽ) से इन्द्रवंशा का चरण और लघु (।) से वंशस्था का चरण लिखित क्रमानुकूल समझना चाहिये।

उपजाति प्रस्तार

संख्या	स्वरूप	अभिधान	संख्या	स्वरूप	अभिधान
१	ऽ।।।	प्रथम	८	।।।ऽ	अष्टम
२	।ऽ।।	द्वितीय	९	ऽ।।ऽ	नवम
३	ऽऽ।।	तृतीय	१०	।ऽ।ऽ	दशम
४	।।ऽ।	चतुर्थ	११	ऽऽ।ऽ	एकादशम्
५	ऽ।ऽ।	पंचम	१२	।।ऽऽ	द्वादशम्
६	ऽऽऽ।	षष्टम	१३	ऽ।ऽऽ	त्रयोदशम्
७	।ऽऽ।	सप्तम	१४	।ऽऽऽ	चतुर्दशम्

(२) मोदक—४ भगण से यह छन्द बनता है। यथा—

"भा चहु पार जु भौ निधि रावन। तौ गहु रामपदै अतिपावन॥
आय धरै लै प्रभु चरणोदक। भूख भगै न भखे मनमोदक॥"

(३) तरलनयनी—४ नगण से यह छन्द बनता है। यथा—

"जय जदुपति जय नरहरि। तरलनयन जय गिरिधरि॥
मद व्यसन सकल छयकर। भज नर हर हर हर हर॥"

(४) द्रुतविलंबित—एक नगण, दो भगण और एक रगण से यह छन्द बनता है। प्राकृत पिंगल सूत्रकार ने इसे सुन्दरी नाम दिया है देखिये—'प्रा० पिं० सू० २।१४५॥ यथा—

"दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला॥

तरुशिखा पर थी सब राजती।
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा ॥"

(५) तोटक—४ सगण से यह छन्द बनता है। यथा—

"अजरं अमरं अधरं सुधरं। अडरं अहरं अमरं अधरं ॥
अपरं असरं सब लायक हो। सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो ॥"

(६) कुसुमविचित्रा—नगण, यगण, नगण और यगण से यह छन्द बनता है। यथा—

"विगलित हारा सकुसुममाला। सचरण लाक्षा वलय सुलक्षा ॥
विरचित वेषं सुरत विशेषं। कथयति शय्या कुसुमविचित्रा ॥"

(७) भुजंगप्रयात—४ यगण से यह छन्द बनता है। यथा—

"निकार्‌यो जो भैया लियो राज जाको।
दियो काढ़ि कै जू कहा त्रास ताको ॥
लिए वानराली कहौं बात तोसों।
सो कैसे लरै राम संग्राम मोसों ॥"

(८) मोतियदाम—४ जगण से यह छन्द बनता है। यथा—

"ऊँचो रघुनाथ धरै धनु हाथ।
विराजत सानुज जानकि साथ ॥
सदा जिनके सुठि आठहुँ याम।
विराजत कंठ सु मोतियदाम ॥"

[मोतियदाम = मोतियों की माला]

(९) स्रग्विणी—चार रगण से यह छन्द बनता है। इसी को भिन्न-भिन्न ग्रंथकारों ने 'शृंगारिणी, कामिनीमोहन, गंगोदक (रामचन्द्रिका : केशव) व लक्ष्मीधर (प्रा० पिं० सू० २।१३३) इत्यादि नामों से पुकारा है। यथा—

"राम राजान के राज आये इहाँ।
धाम तेरे महाभाग जागे अबै ॥
देवि मंदोदरि कुंभकर्णादि दै।
मित्र मंत्री जिते पूछि देखो सबै ॥"

शक्वरी : (चतुर्दशाक्षरावृत्ति १६३८४)

(१) **वसन्ततिलका**—एक तगण, एक भगण, दो जगण और दो दीर्घ वर्णों से यह छन्द बनता है ७-७ वर्ण पर यति ! यथा—

"पूजैं जिन्है मुकुट, हार किरीट जाके ।
इन्द्रादिदेव अरु, पूज्य पदाब्ज जाके ॥
सो शांतिनाथ वर, वंश जगत्प्रदीप ।
मेरे लिये करहि, शान्ति सदा अनूप ॥"

प्रसूचना—(१) 'सिंहोन्नता काश्यपस्य ।(छं० शा० ॥७।६॥ अध्याय ७) उपर्युक्त 'वसन्ततिलका' नामक छन्द आचार्य कश्यप के मतानुसार 'सिंहोन्नता है।

और

(२) 'उद्धर्षिणी सैवतस्य ।' (छं० शा० ॥७।१०॥ अध्याय ७) आचार्य सैवत के मतानुसार 'उद्धर्षिणी' है ।

(३) मन्दारमरन्दकार ने सिंहोन्नता को 'सिंहोद्धता' व उद्धहर्षिणी को 'चेतोहिता' नाम दिया है ।

अतिशक्वरी : (शिववक्त्राक्षरावृत्ति ३२७६८)

(१) **नलिनी**—पाँच सगण से यह छन्द बनता है । प्राकृतपिंगल सूत्रकार ने इसे ही 'भ्रमरावलि' नाम दिया है । यथा—

"कर पंच पसिद्ध विलद्धवरं रअणं पभणंति मणोहर छंदवरं रअणं ।
गुरु पंच दहा लहु एरिसिअं रइअं भमरावलि छंद पसिद्ध किअं ठइणं ॥"

(प्रा० पिं० सू० २।१८५)

"झननं झनन झननं झननं झननं ।
सुरलेत तहाँ तननं तननं तननं ॥
घननं घननं घननं घन घंट बजै ।
दमदं दमदं दमदं मिरदंग सजै ॥"

(२) **निशिपालक**—यह १ भगण, १ जगण, १ सगण, १ नगण और १ रगण से बनता है । आचार्य केशवदास ने इसे ही 'निशपालिका' छन्द कहा है !

यथा—शत्रु सम मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
दूत विधि नूत कबहूँ न उर आनहीं॥
आप मुख देखि अभिलाष अभिलाषहू।
राखि भुज शीश तब और कहँ राखहू॥"

(२) मालिनी—दो नगण, एक मगण और दो यगण से यह छन्द बनता है। ८-७ वर्णों पर यति होती है। यथा—

"तनमन जिस पर, वारती थी सदैव।
वह गहन वन वनों में जायगा हाय दैव॥
सरसिज-तन हा, हा, कंटकों में खिचेगा।
वृत-मधु-पय-प्याला, स्वेद ही से सिंचेगा॥"

अष्टिः (षोडशाक्षराणां वृत्ति ६५५३६)

(१) नराच (पंचचामर)—जगण, रगण, जगण, रगण, जगण और १ गुरु।

"पढ़ो विरंचि मौन वेद जीव सोरे छंडिरे।
कुबेर बेर कै कही न यक्ष भीर मंडिरे॥
दिनेश जाइ दूरि बैठु नारदादि संगहीं।
न बोल चंद मंद बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं॥"

अत्यष्टिः (सप्तदशाक्षरावृत्तिः १३१०७२)

(१) मन्दाक्रान्ता—मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरुवर्ण। ४-६-७ अक्षरों पर यति। यथा—

"शास्त्रों का हो, पठन सुखदा, लाभ सत्संगती का।
सद्वृत्तों का, सगुन कहके, दोष ढाकूँ सभी का॥
बोलूँ प्यारे, वचन हित के, आपका रूप ध्याऊँ।
तौलों सेऊँ, चरन जिनके, मोक्ष जौलौं न पाऊँ॥"

(२) वंशपत्रपतित—भगण, रगण, नगण, भगण, नगण और लघु-गुरु। १०-७ वर्ण पर यति।

"अद्य कुरुष्व कर्म सुकृतं, यदपरदिवसे।
मित्र! विधेयंस्ति भवतः, किमुचिरयसितत्?
जीवितमल्पकालकल ना, लघुतर तरलं।
नश्यति वंशपत्रपतितं, हिम सलिल मिव॥"

(३) शिखरिणी—यगण, मगण, नगण, सगण, भगण और लघुगुरु। ६-११ वर्ण पर यति। यथा—

"पखारूँगा सारी, पदरज तुम्हारी न जबलौं।
उतारूँगा स्वामी, बर न तुमको पार तबलौं॥
न मारे क्यों होके, कुगति मुझको लक्ष्मण यहीं।
लगाऊँगा नौका, पद-कमल धोये बिन नहीं॥"

धृति (अष्टादशाक्षरा वृत्ति २६२१४४)

(१) नाराच—नगण, नगण, रगण, रगण, रगण और रगण 'सिंह-विक्रीड़ित, महामालिका, निशा, लालसादि नामान्तर हैं।

(२) हरिणप्लुत—भगण, सगण, जगण, जगण, भगण और रगण।

(३) चर्चरी—रगण, सगण, जगण, जगण, भगण और रगण। ८-१० वर्ण पर यति। चंचरी, विबुधप्रिया व हरनर्तनम् इसके नामान्तर हैं।

यथा—"देहिं अंगद राज तोकहँ, मारि बानरराज को।
बाँधि देहिं विभीषणौ, अरु फोरि सेतु समाज को॥
पूँछ जारहिं अक्षरिपु की, पाइँ लागहिं रुद्र के।
सीय को तब देहुँ रामहिं, जब पार जाइँ समुद्र के॥"

अतिधृति (ऊनविंशत्यक्षरा वृत्ति ५२४२८८)

(१) शार्दूलविक्रीड़ित—मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और १ गुरु। १२-७ वर्ण पर यति। यथा—

"काले कुत्सित कीट का कुसुम में, कोई नहीं काम था।
काँटे से कमनीयता कमल में, क्या है न कोई कमी?
दण्डों में कब ईख के विपुलता, है ग्रन्थियों की भली।
हा! दुर्दैव प्रगल्भते! अपटुता, तू ने कहाँ की नहीं॥"

प्रकृति (एकविंशत्यक्षरा वृत्ति २०९७१५२)

स्रग्धरा :—मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण और यगण से यह छन्द बनता है। ७-७-७ वर्ण पर यति। यथा—

"होवे सारी प्रजा को, सुख बलयुत तो, धर्मधारी नरेशा।
होवे वर्षा समै पै, तिलभर न रहै, व्याधियों का अँदेशा॥
होवे चोरी न जारी, सुसमय वरतै, हो न दुष्काल भारी।
सारे ही देश धारें, जिनवर वृष को, जो सदा सौख्यकारी॥"

आकृति (द्वाविंशत्यक्षरा वृत्ति ४१९४३०४)

(१) मदिरा (सवैये)—७ भगण और १ गुरु से यह बनता है। यथा—

"राम को काम कहा? रिपुजीतहिं, कौन कबै रिपु जीत्यो कहा।
बालिबलि छलसों भृगुनन्दन गर्व हर्यौ द्विज दीन महा।
दीन सों क्यों? छिति छत्र हत्यो बिन प्राणनि हैहयराज कियो।
हैहय कौन? वहै बिसर्यो जिन खेलत ही तुम्हैं बाँधि लियो॥"

(२) मोद :—५ भगण + १ मगण + १ सगण + १ गुरु। यथा—

"भे सर में सिगरे गुण अर्जुन जाहिर भूपालौ हु लजाने।
ज्योंहि स्वयंवर में मछरी दइ बेधि सभासौं द्रौपदि आने॥
जाय कह्यौ निज मातहिं तें फल एक मिलो एतोहि बखाने।
बाँटहु आपस में तब बोलत मोद गहे कुंती अनजाने॥"

विकृति (त्रयोविंशत्यक्षरा वृत्ति ८३८८६०८)

(१) सर्वगामी (अग्र)—इसमें ७ तगण और दो गुरुवर्ण होते हैं। यथा—

"तिल्लोक गंगा किये पाप भंगा महापापियों को सदा तारती तू।
मो बेर क्यों बेर तुने लगाई नहिं तारिणी नाम क्या धारती तू॥
सेवा बने मात कैसे तुम्हारी सदा सेवते सिर पै सर्वगामी।
मैं क्रूर कामी महा पाप धामी तुहि एक आधार अम्बे! नमामि॥"

(२) मत्तगयंद (विजय)—७ भगण और दो गुरु। यथा—

"नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपि-पुंज तिहारे।
आठहु आठ दिशा बलि दै अपनो पदु लै पितु जालगि मारे॥

तोसों सपूतहि जाइकै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मरो सबै दल आजुहि क्यों न हने बपमारे॥"

(३) सुमुखी—७ जगण और लघुगुरु। यथा—

"जु लोक लगैं सिय रामहिं साथ चलैं बन माहिं फिरै न चहैं।
हमैं प्रभु आयसु देहु चलैं रउरे संग यों कर जोरि कहैं॥
चलैं कछु दूरि नमैं पग धूरि भले फल जन्म अनेक लहैं।
सिया सुमुखी हरि फेरि तिन्हे बहुँ भाँतिन सें समुझाय कहैं॥"

(४) चकोर :—७ भगण और गुरु लघु।

"नाम अजामिल से खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़।
जे सुमिरे गिरि मेरु शिला कन होत अजाखुर वारिधि बाढ़॥
तुलसी जिहि के पद पंकज ते प्रकटी तटनी जो हरे अघ गाढ़।
ते प्रभु या सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़॥"

संस्कृति (चतुर्विंशत्यक्षरा वृत्ति १६७७७२१६)

(१) दुर्मिल—८ सगण। 'चन्द्रकला', द्रुमिल (प्रा० पिं० सू० २।२७७) और 'घोटक' (वृत्तमणि कोष) आदि इसके नामान्तर है। यथा—

"तन की द्युति श्याम सरोरुह लोचनकंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ-द्युति दामिन ज्यों बिलकैं कलबाल विनोद करैं।
अवधेश के बालक चार सदा तुलसी मन-मंदिर में बिहरैं॥"

(२) मुक्तहरा—इसमें ८ जगण होते हैं। यथा—

"जु लोक यथा मति वेद पढ़ै सह आगम औ दस आठ प्रमाण।
बनैं महि में शुक शारद शेष गणेश महा बुधि अंत समान॥
चढ़ै गजबाजि सु पीनस आदि जु वाहन राजत केर बखान।
लहैं भलि वाम अरु धनधाम तु काह भयो बिनु रामहिं जान॥"

(३) वाम—७ जगण और १ यगण से यह छन्द (सवैया) बनता है।

यथा—

"जु लोक लगैं सिय रामहिं साथ चलैं बनमाँहि फिरै न चहैं है।
हमैं प्रभु आयसु देह चलैं रउरे संग यों कर जोरि कहैं है॥
चलैं कछु दूर नमैं पग धूरि भले फल जन्म अनेक लहैं है।
सिया सुमुखी हरि फेरि तिन्हे बहु भाँतिन यों समुझाय कहैं हैं॥"

(४) अरसात—७ भगण + १ रगण से यह सवैया बनता है। यथा—

"भासत ख्द्र जु ध्यानिन में पुनि सार सुती जसवानिन ठानिये।
नारद ज्ञाननि पानिन गंग सुरानिन में विकटोरिय मानिये॥
दानिन में जस कर्ण बड़े तस भारत अम्ब भली उर आनिये।
बेटन के दुखमेटन में कबहूँ अरसात नहीं फुर जानिये॥"

(५) किरीट—८ भगण से यह वृत्त बनता है। यथा—

"पन्थ अनेक प्रचार किये रचि ग्रंथ महाबकवाद निकेतन।
एक अगोचर ब्रह्म बिसारि अचेत भये जड़ पूजि अचेतन॥
राम नरेश कुरीति पसारि डुबाय रहे दुख वारिध में तन।
भारत के उपदेशक धारि कुवृत्ति किरीट रहे ठगि वेतन॥"

अभिकृतिः (पंचविंशत्यक्षराणि वृत्ति ३३५५४४३२)

(१) सुन्दरी—८ सगण और १ गुरु से यह सवैया बनता है। यथा—

तन की द्युति श्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं हैं।
अति सुन्दरि सोहत धूरि भरे छबि भूरि अनंग की दूरि धरैं हैं॥
दमकैं दँतियाँ द्युति दामिनि ज्यौं बिलकैं कल बाल विनोद करे हैं।
अवधेश के बालक चार सदा तुलसी मनमंदिर में बिहरे हैं॥"

(२) अरविन्द—८ सगण + १ लघु। यथा—

"सबसों लघु आपहिं जानिय जू यह धर्म सनातन जान सुजान।
जबहीं सुमती अस आनि बसे उर संपत्ति सर्व विराजत आन॥
प्रभु व्याप रह्यौ सचराचर में तजि बैर सुभक्ति सजो मतिमान।
नित राम पदे अरविन्द को मकरन्द पियो सुमलिन्द समान॥"

(३) लवंगलता—८ जगण और १ लघु । यथा—

"जु योग लवंगलतानि लग्यो तब सूझ परै न कछु घर बाहर।
अरे मन चंचल नेक विचार नहीं यह सार असार सरासर ॥
भजो रघुनंदन पाप निकंदन श्री जगवंदन नित्य हियाधर ।
तजो कुमती धरिये सुमती शुभ रामहिं राम कहो निशि-बासर ॥"

उक्तिः (रसलोचनालगणिा वृत्ति ६७१०८८६४)

(१) सुख (कुन्दलता) —८ सगण + २ लघु वर्ण । यथा—

"सबसौं ललुआ मिलिकै रहिये मम जीवन मूरि सुनौ मनमोहन ।
इमि बोधि खवाय पिवाय सखा सँगजाहु कहे मुद सों बन जोहन ॥
धरि मातु रजायसु सीस हरि नित यामुन-कच्छ फिरैं सह गोपन ।
यहि भाँति हरि जसुदा उपदेसहिं भाषत नेह लहैं सुख सों धन ॥"

[६] समदण्डक वृत्त

(१) मनोजशेखर (महीधर)—इस छन्द में क्रम से ५ जगण और ४ रगण होतेहैं और अंत में एक गुरुवर्ण होता है । यथा—

"जरौ जरौ जरौ जरौ जगौ क्रमेण चेद्यदा ।
तदा भुजंगनायको मनोज्ञशेखरं जगौ ॥" (वृ०चं०)

(२) अशोक पुष्प मंजरी (२८)—इस छन्द में क्रम से ५ रगण और ४ जगण होते हैं और अंत में एक लघु वर्ण होता है । यथा—

"रजौ रजौ रजौ रजौ रलौ क्रमेण चेद्यदा ।
अशोक पुष्पमंजरी समीरिता फणीश्वरैः ॥ (वृ०चं०)

(३) अनंगशेखर—लघुगुरु वर्णों के क्रम से चाहे जितने वर्ण हो सकते हैं । परन्तु इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि सब चरणों के वर्ण समान हों और लघु-गुरु वर्णों की आवृत्ति क्रमानुकूल हो । यथा—

"गरज्ज सिंहनाद लौं निनाद मेघनाद वीर,
क्रुद्धमान सान सों कृशानुबाण छंडियं ।
लखी अपार तेज धार लक्खनौकुमार,
वारिवान सों अपार धारवर्षि ज्वाल खंडियं ॥

उड़ाय मेघमाल को उताल रच्छपाल,
बाल पौन वान अत्र वाल कीस जाल दंडिय।
भयो न होत होयगो न ज्यों अमान,
इन्द्रजीत रामचन्द्र-बन्धु सों कराल युद्ध मंडिय॥"

[७] मुक्तक सम (साधारण) दण्डक वृत्त

(१) मनहरण (कवित्त)—इस छन्द में १६ और १५ वर्णों के विराम से प्रत्येक चरण में कुल ३१ वर्ण होते हैं। अंतिम वर्ण गुरु होता है। यथा—

"सुखद सजीली शस्य श्यामला यहाँ की भूमि,
श्याम के ही रंग में रँगी प्रेम भाव से।
रज भी पुनीत हुई उनके चरण छूके,
सीस पर चढ़ाते उसे भक्तजन चाव से॥
पापपुंजनाशी उरकमल विकाशी हुआ,
यमुना-सलिल बस उनके प्रभाव से।
कर दिया पूरा उसे वर वृन्दावन ने ही,
जो थी कमी मेदिनी में स्वर्ग के अभाव से॥"

(२) रूपघनाक्षरी—१६-१६ वर्णों के विराम से इसके प्रत्येक चरण में कुल ३२ वर्ण होते हैं। अंत में गुरुलघु होता है। यथा—

"भूपैभूपैर्विरामः स्याद्गण भेद गलोज्झितैः,
ज्ञेयान्ते लघुना युक्ता रूपपूर्वा घनाक्षरी॥" (वृत्तचंद्रिका)

(३) देवघनाक्षरी—८-८-८ और ६ वर्णों की यति से कुल ३३ वर्ण होते हैं। अंतिम तीन वर्ण लघु होते हैं। यथा—

"झिल्लि झनकारैं पिक चातक पुकारैं वन,
मोरनि गुहारै उठे जुगनू चमकि चमकि।
घोर घन कारे भारे धुरवा धुरारे धाप,
धूमन मचावैं नाचैं दामिनी दमकि दमकि॥
फूकन बयारि बहे लूकनि लगावे अंग,
हूकनि भभूकनि की उर में खमकि खमकि।

कैसे करि राखौ प्रान प्यारे जसवंत बिन,
नानी नानी बूँद झरै मेघवा झमकि झमकि ।।"

(४) जनहरण—इसके प्रत्येक चरण में ३० लघु वर्ण और १ गुरु वर्ण होते हैं। १०-८-८ और ५ वर्णों पर यति। यथा—

"जय जदुपति जय जय, जय नरहरि जय,
जय कमलनयन, गिरधरये।
जगपति हरि जय जय, गुरु जग जय जय,
मनसिज जय जय, मन हरये।।
जय परम सुमति धर, कुमतिन छयकर,
जगत तपत हर, नर वरये।
जय जलज सुदृश छबि, सुजन नलिन रवि,
पढ़त सुकवि जस, जग परये।।"

(५) जलहरण—८-८-६ और ७ वर्णों की यति से ३२ वर्ण होते हैं। चरणांत के दो वर्ण लघु होना चाहिये। यथा—

"ग्रीष्म का मिटा है जुल्म, उमके हैं लता गुल्म,
हरषि कमल नाल कली खिल आइ सब।
उपजे हैं कन्दमूल, खिले सारे फलफूल,
कूके कलकंठ ताकी वाणी है सुहाइ अब।।"
खरे कई हिमनग, खरे कई द्विषाश्रग,
करै गौन मंद पौन अति सुखदाइ अब।
नाद करे लम्बकर्ण, नाचत हैं चित्रवर्ण,
क्रीड़ा करें शान्ति भव, मधु आस आइ अब।।"

(६) कृपाण—प्रत्येक चरण में ८-८ वर्णों की सानुप्रास यति से कुल ३२ वर्ण होते हैं। चरणांत में गुरुलघु होता है। यथा—

"जहाँ सूल सेल सांग, मुद्गर की लड़ान,
बांक बिछुवा मचान, सोर छायो चहुँआन।

तहाँ लपट-लपट, मुण्ड कीन्हे चटकान,
कहूँ रावन हजार, सीसहूँ को न लखान।
घनै घूमे घबरान, जाके तेऊ नहीं जान,
केते चढ़िकै विमान, वीर बोलैं करखान।
तहाँ ठमकि ठमकि, पगु धरति झमकि,
कर लमकि लमकि, काली झारै किरपान ॥"

(७) विजया—८-८ वर्णों के विश्राम से प्रत्येक चरण में कुल ३२ वर्ण होते हैं। अंत में लघुगुरु या तीनों वर्ण लघु होना चाहिये। यथा—

(i) रूपा जस शोभै अम्बु, करे तहाँ क्रीड़ा कम्बु,
अजब ही शोभै चक्र घूमत मराल अबै।
(। ऽ)

"गुंजत मलिन्दवृन्द, उगी रहे नाना कंद,
घूमें घन पारीरण, तैरी रहै व्याल सबै ॥
तहाँ कई रम्यवन, गुञ्जत खंजनगन,
चातक बाहुज कोक, कूकत रसाल सबै।
षोड़स कला के साथ, सोम इतउत जात,
शांति शोभै निशागात, आयो हिमकाल अबै ॥"

(ii) हरषे अखिल फूल, सजी गये सिंधु कूल,
जहाँ देखो बस वहीं, हरियाली छाइ अब।
(। । ।)

घूमत मतंग घोर, करी शोर नाचे मोर,
बोले टर्र टरु ताकी, टर्र मनभाइ अब ॥"
सूखे तरु हरे खरे, सूखे ताल भरे परे,
झरना झरत ताकी, गीतिका सुहाइ अब।
पच्छी होके एकमेक, बात कहैं यही एक,
विश्व ऋतु माहिं शांति, क्रीदा नभ आइ अब ॥"

(८) अनुष्टुप (श्लोक)—इसके प्रत्येक चरण में ८ वर्ण होते हैं। विषम चरणस्थ ८ वाँ वर्ण लघु तथा समचरणस्थ ७ वाँ वर्ण लघु होना परमावश्यक है। यथा—

"प्रध्वस्त घातिकर्माणः। केवलज्ञान भास्कराः ॥
कुर्वन्तु जगतः शान्ति। वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥"

(९) सिंहावलोकन (कवित्त)—इसका प्रयोग मनहरण छन्दों में अधितः पाया जाता है। इसकी रचना मनहरण जैसी है, परन्तु इसमें यह विशेषता है कि इसके पहले चरण का पदांश चतुर्थ चरण के अंत में होता है, प्रथम चरणांत द्वितीय का आदि पदांश होता है। इसी प्रकार इसमें शब्दावृत्ति रहती है। नीचे के उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा—

"छायो है प्रखर ताप दाप को प्रताप पुञ्ज,
(१)
कुञ्ज और निकुञ्ज लूक हूक सों सतायो है।
(२)
तायो है तवा सो खासो भूतल भभकि भूरि,
(२)
नीरस निदाघ कोपि जग विकलायो है ॥
(३)
लायो है मयूखनि मयूखभरि भानु इतैं,
(३)
अगिन दिशा सौं कहै कोऊ कढ़ि आयो है।
(४)
आयो है तपिन ह्वै तहाँ तै रवि-रथ-हेम,
(४)
सरस बखानैं यह ताको ताप छायो है ॥"
(१)

[८] वर्णिक अर्द्धसम वृत्त

इन छन्दों के प्रस्तार अंक जानने की यह तरकीब है कि सम चरणों के वर्णों का विषम चरणों के अंकों से गुणा करलें और फिर उस गुणनफल में से मूलराशि घटालें, जो आवे वही उत्तर होगा।

(१) **भद्रविराट्**—विचम चरणों में (तगण + जगण + रगण + १ गुरु) और सम चरणों में (म + स + ज + २ गुरु)। यथा—

"यत्पाद तले चकास्ति चक्रम्। (१० वर्ण)
हस्ते वा कुलिशं सरोरुहं वा॥ (११ वर्ण)
राजा जगदेक चक्रवर्ती। (१० वर्ण)
स्याच्छं भद्रविराट् समश्नुतेऽसौ॥ (११ वर्ण)

(२) **आख्यानकी**—विषम चरणों में (त + त + ज + दो गुरु) और सम चरणों में (ज + त + ज + दो गुरु)। प्राकृत पिंगल सूत्रकार ने (अध्याय २ में) इसे 'उपजाति' के १४ भेदों के अंतर्गत 'भद्रा' नामक १० वाँ भेद कहा है। यथा—

"सद्धर्म का मार्ग तुम्हीं बताते। तुम्हीं अघों से हमको बचाते॥
है ग्रन्थ विद्वान तुम्ही बनाते। तुम्हीं दुखों से हमको छुड़ाते॥"

(३) **विपरीताख्यानकी**—इसके विषम चरणों में (ज + त + ज + दो गुरु) और सम चरणों में (त + त + ज + दो गुरु) होते हैं। प्रा० पिं० सूत्र अध्याय २ में इसे 'उपजाति' का 'हंसी' नामक पाँचवाँ भेद कहा गया है। सुतरां 'हंसी' इसका नामान्तर है! यथा—

"पदं तुषार स्रुतिधौत रक्तं। यस्मिन्न दृष्ट्वापि हत द्विपानाम्॥
विदन्ति मार्गं न रवरन्ध्र मुक्तैर्मुक्ता फलैः केसरिणां किराताः॥"
(कुमार संभव १।६)

[९] विषम वर्णिक वृत्त

ये छन्द हिन्दी में प्रचचित नहीं हैं; अधिकांशतः ये संस्कृत व मराठी में प्रचलित हैं। यहाँ इस प्रकरण में हम केवल 'आर्या' का वर्णन करेंगे।

(१) आर्या—'पढमं बारहमत्ता वीए अट्ठादहेहिं संजुत्ता ।
जह पढमं तह तीश्रं दहपंच विहूसिश्रा गाहा ।'
(प्रा० पि० सूत्र० १।४६)

—अर्थात् गाथा (आर्या) वृत्त के पहले व तीसरे चरण में १२-१२ मात्रा, दूसरे चरण में १८ मात्रा और चतुर्थ चरण में १५ मात्राएँ होती हैं ।

या

"सव्वाए गाहाए सत्तावण्णाइँ होन्ति मत्ताइं ।
पुव्वद्धम्मि श्र तीसा, सत्ताईसा पर परद्धम्मि ॥"
(प्रा० पि० सू० १।५१)

—अर्थात् गाथा (आर्या) वृत्त में सब कुल मिलाकर ५७ मात्राएँ होती हैं+ तीस इसके पूर्वार्द्ध में और २७ इसके उत्तरार्द्ध में ।'

आर्या छन्द का उदाहरण—

"सत्पुरुषाणां दानं, कल्पतरूणां फलानी शोभा वा ।
S I I S S S S, S I I I S I S S S S S
लोभिनां दानं यथा, विमान शोभा शवस्य जातिहि ॥"
S I S S S I S, I S I S S I S I S S I
(रयणसार)

इसी प्रकार—

(१) "सिंहस्य क्रमे पतितं, सारगं यथा न रक्षते कोऽपि ।
तथा मृत्युना च गृही, तं जीवमपि न रक्षले कोऽपि ॥"
(स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा २४)

(२) "आयासः परहिंसा, वैतंसिक सारमेय ! तुव सारः ।
त्वामपसार्य विभाज्यः, कुरंग एषोऽधुनैवान्यैः ॥"
(आर्या सप्तशती १००)

(३) "अण्णाणं वि होन्ति, मुहे पम्हल धवलाइँ दीह कसणाइं ।
णग्रणाइँ सुंदरीणं, तह वि हु दट्ठुं ण जाणन्ति ॥"
(प्राकृत-गाथा-सप्तशती ५।७०)

[१०] स्वतंत्र (संगीतात्मक) छन्द

ऐसे छन्दों का संबंध संगीत से रहता है। इनमें उपर्युक्त पिंगलशास्त्र के नियमों का पालन नहीं किया जाता, परन्तु गायन विद्या से इसका बहुत सम्बन्ध होता है।

मीरा और सूरदास आदि के पद या भजन इन्हीं छन्दों के अंतर्गत आते हैं। यथा—

(१) (राग तिलक कामोद—तीन ताल)

'मैंने रामरतन धन पायौ।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु,
किरपा कर अपनायौ ॥१॥
जनम जनम की पूँजी पाई,
जग में सबै खोवायौ ॥२॥
खरचै न खूटै, वाको चोर न लूटै,
दिन दिन बढ़त सवायौ ॥३॥
सत की नाव, खेवटिया सतगुरु,
भवसागर तर आयौ ॥४॥
'मीरां' के प्रभु गिरिधर नागर,
हरख हरख जस गायौ ॥५॥'

२. (राग दरबारी कानड़ा—तीन ताल)

"घूँघट के पट खोल रे तोको पीव मिलेंगे।
घट घट में वह साँई रमता कटुक वचन मत बोल रे॥
धन जोबन को गरव न कीजै झूँठा पँचरँग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बारिलैं आसन से मत डोल रे॥
जाग जुगुत सों रंग-महल में पिय पायो अनमोल रे।
कहै 'कबीर' आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥"

३. (राग कल्याण—तीन ताल)

"चरनकमल बन्दौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे को सब कुछ दरसाई॥

बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चले सिर छत्र धराई ।
'सूरदास' स्वामी करुनामय, बार बार वन्दौं तेहि पाई ॥"

४. (राग गजल—पहाड़ी धुन)

'समझ देख मन मीत पियारे आसिक होकर सोना क्या रे ।
रूखा सूखा गम का टूकड़ा फीका और सलोना क्या रे ॥
पाया हो तो दे ले प्यारे पाय पाय फिर खोना क्या रे ।
जित अँखियन में नींद घनेरी तकिया और बिछौना क्या रे ॥
कहे 'कबीर' सुनो भई साधो दिया तब रोना क्या रे ॥'

५. (राग शंकरा—तीन ताल)

'काहे रे बन खोजन जाई ।
सर्व-निवासी सदा अलेपा, तो ही संग समाई ॥ध्रुव॥
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकुर माहिं जस छाई ।
तैसे ही हरि बसैं निरन्तर, घट ही खोजो भाई ॥१॥
बाहर भीतर ऐकै जानो, यह गुरु ज्ञान बताई ।
जन 'नानक' बिन आपा चीन्हे, मिटै न भ्रमकी काई ॥२॥'

६. गज़ल—

'अगर शौक है मिलने का, तो हरदम लौ लगाता जा ।
जलाकर खुदनुमाई को, भसम तन पर लगाता जा ॥
पकड़कर इश्क की झाड़ू, सफा कर हिज्र-ए दिल के ।
दुई की धूल को लेकर, मुसल्ले पर उड़ाता जा ॥
मुसल्ला छोड़, तसबी तोड़; किताबें डाल पानी में ।
पकड़ दस्त तू फरिश्तों का, गुलाम उनका कहाता जा ॥
न मर भूखा, न रख रोजा, न जा मसजिद, न करसिजदा ।
वजू का तोड़ दे कूजा, शराबे शौक पीता जा ॥
हमेशा खा, हमेशा पी; न गफलत से रहो इकदम ।
नशे में सैर कर अपनी, खुदी को तू जलाता जा ॥

न हो मुल्ला, न हो बम्मन; दुई की छोड़ कर पूजा।
हुक्म है शाह कलंदर का, अनलहक तू कहाता जा॥
कहे 'मंसूर' मस्ताना, हक मैंने दिल में पहिचाना।
वही मस्तानों का मयखाना, उसी के बीच आता जा॥'

[खुदनुमाई = घमण्ड; इश्क=भक्ति; हिज्र = विरह; दुई = द्वैत; मुसल्ला = आसन; तसबी = माला; दस्त = हाथ; रोजा = लंघन; सिजदा=प्रार्थना; वजू का कूजा = पादप्रक्षालन पात्र; अनलहक = सोऽहं; मयखाना = शराब खाना]

पद्यों की अकारादि क्रम से सूची

नीचे उन पद्यों की अकारादि क्रम से सूची दी गई है, जो हिन्दी-काव्य-शास्त्र के किसी प्रसंग में उद्धृत या उदाहृत हुए हैं :—

अंग्रेजी

हिन्दी